२४२ -

॥ ॐ ॥ ॥ ॐ ॥ ॥ ॐ ॥

ब्रह्म-विद्या

अर्थात्

अपने आत्मा की पहचान

★★★

॥ टिप्पणी ॥

जैसे नाटक में पार्ट करते समय कोई भी मनुष्य अपनी वास्तवक्ता को भूल नहीं जाता और हर एक पार्ट में अपने को नट समझ कर पूरी सावधानी से वर्ताव करता है। ठीक इसी प्रकार, यदि हम जान जांय, कि संसार सचमुच एक नाट्यशाला है और हम सब उसमें नट के सदृश भाग लेने वाले हैं, तो यह संसार अपनी बुराइयों-भलाइयों और आशा-निराशा से हमें विचलित न कर सकेगा; इसलिए हमें अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, वरन् ऐसा न हो, कि हम इस संसार को सत्य समझ कर किसी उलझन में न फंस जांय। ॐ।

रत्न  २२

ब्रह्म विद्या

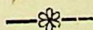
अर्थात्
अपने आत्मा की पहचान

ब्रह्मविद्याया ह वै सर्वं भविष्यन्तो मन्यन्ते मनुष्याः ।
जब कभी आप में आत्म समराज पाने की उमंगे उठनें लगे ।
तब सावधान हो कर इस पुस्तक को वीचारना शुरू करें ।

रचियता और प्रकाशक

श्री सतचित् परमानन्द-भण्डार

पो० कनखल (हरिद्वार)



नवम्बर १९६०] [मूल्य ६५ नया पैसा

॥ विषय सूची ॥

विषय — पृष्ठ

—:०:—

हक प्रेम प्रेमी सुगंध है हक भंवर फूल सुगंध है !

हक आप "परमानन्द" है हक की हकीकत है यही !!



:×: उद्देश्य :×:



स पुस्तक में जिस उद्देश्य का वर्णन किया गया है, वह है जीव और ब्रह्म के वास्तविकता की पहचान, जो मानुष जीवन में बड़े ही महत्व का विषय है। भारत में ब्रह्म विद्या के आचार्यों ने महा समाधि में स्थत हो कर यह अनुभव किया था, कि इस निासर शरीर में एक सार वस्तू है, जिसके साचात्कार होने पर हमारे सम्पूर्ण भेद भाव दूर हो सकते हैं। परन्तू उस अमोल ब्रह्मविद्या के रूधेन किए बिना हमें छोटी से छोटी बातें भी बड़ा बोझ सा मालूम होने लगती है। जिस कारण तुच्छ पदारथों के लिए राग, द्वेश शोक, मोह आदकों से चारों ओर घेरे रहते है।

प्रकृति अपना रूप पसार रही है। हम उसके नियम की चक्की में पीसे जा रहे हैं। हमें करवट बदलने की भी छुट्टी नही मिलती। जिधर मुख कर भागना चाहते हैं, तो प्रकृति का दंड हमारे पीछे लगा हुआ है। यह सब होते हुए भी जीवात्मा अपने सुख रूपता को नहीं भूला, वह सदा उसकी धुनि में लगा रहता है, पर आत्मा का ज्ञान, जो अब तक अज्ञात् रूप में है, इसलिए मनुष्य कितनी भी बाहरी स्वतंत्रता मिलने पर,

अपने लिए शोक मोह ही उत्पन्न करता रहता है। अज्ञात् अवस्था में हम अपने को परिमित और तुच्छ समझते हैं। हमारा अनंत से जो संबंध है, वह गुप्त रूप से अब भी मौजूद है, परन्तु हमें अपने सच्चे स्वरूप का बोध नहीं रहा, इसी कारण हम दुःखी-परतन्त्र जीवन बिता रहे हैं।

जो लोग इस जीवन में उस ऊंची स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं, जो भारत के ब्रह्मवेत्ताओं की थी, उनके लिए यह नितान्त आवश्यक है, कि वे जिन असद्भावनाओं से घेरे हुए हैं, उनका सर्वथा परित्याग कर दें। जिस आत्म विकास का इस 'ब्रह्मविद्या' नामा पुस्तक में वर्णन है, उसकी तीव्र धारणा अपने हृदय में जमाने का प्रयत्न करें।

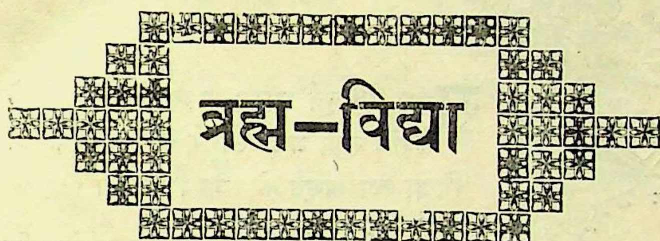
मैं चाहता हूँ, कि पाठक गण इस विषय को पूर्ण रूप से समझ सकें. कि वास्तविक स्वतन्त्रता का आनन्द किसे कहते हैं? जिन लोगों में सत्य की भावना प्रगट हो चुकी है, जो प्रत्येक निरार्थक परिस्थिति को उखाड़ फेंकने के लिए उत्सुक हैं, उन महानुभावों को इस पुस्तक के अध्ययन करने से अवश्य परम लाभ होगा और जीवन के नव निर्माण करने में उन्हें बड़ी सहायता मिलेगी। ॐ आनन्द!

आपका अपना,

परमानन्द!



❀ जय सच्चिदानन्द ❀



वेदान्तसार सर्वस्वं ज्ञान-विज्ञान मेव च।
अहमात्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः ॥

(अवधूत गीता)

भावार्थ— वेदांत का सारभूत जो अद्वैत ब्रह्म का चिंतन है वही हमारा सर्वस्व है और वही हमारा ज्ञान-विज्ञान है अर्थात् परोक्ष तथा अपरोक्ष ज्ञान भी हमारा वही है और मैं ही व्यापक रूप आत्मा हूँ और निराकार भी हूँ अणु, ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ आदि आकारों से रहित हूँ और स्वभाव से ही मैं सर्वव्यापी भी हूँ।

नमो नमो गुरदेव जू, सत्-चित् आनन्द रूप।
ब्रह्म विलासी परम सुख-रासी केवल ज्ञान-स्वरूप ॥
एक अद्वैत गगन सम पूर्ण साक्षी ब्रह्म-स्वरूप।
नमस्कार तौ पद स्वामी, अभय दान दीजे सुखधामी ॥

—०—❀—०—



सहंस्त्र वर्ष पूर्व भारत के ब्रह्मवेत्ताओं ने वेद-वेदांत रूपी महा सागर का मथन कर ब्रह्म-विद्या रूप अमृत को प्राप्त किया था।

जिस विद्या से हमारी सब परेशानियां और आपसी भेद-भाव दूर होने लगे थे, और हम अपने को अजर, अमर अनुभव कर रहे थे, परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया हम अनेक प्रकार के विद्याओं का अध्ययन करते हुए, मूल अध्यात्म विद्या को विस्मरण कर, कई प्रकार के आनात्म वाद में विवश हो गये ।

फिर आज के संसर में विश्वशांति और विश्व वन्धुता की घोषणा होने लगी है। मानव तो युगों से नित्य सुख, शाश्वत शान्ति का अभिलाषी है।

वह निर्विघ्न अखण्ड एकता, एक ब्रह्मविद्या प्राप्त किये बिना पाना असम्भव है। तब कहा है:—

यह भारत वासियों की विद्या है।
पाना इसको फर्ज़ सबका है ॥
'मैं हूं शुद्ध आत्म', यह करो अभ्यास।
मैं नहीं हूँ जिस्म हाड़, चाम, और मास ॥

प्रश्न— ब्रह्म-विद्या किसे कहते हैं ?

उत्तर— ब्रह्म परमात्मा जो आगे पीछे, ऊपर नीचे

सर्वत्र पूर्ण है' उसका जिस विद्या से हमें आठोंयाम प्रत्यक्ष अनुभव हो सके।

प्रश्न— ऐसे अनुभव से हमें क्या लाभ होगा ?

उत्तर— जिस अज्ञान और निर्बलता के बन्द कमरों में हम जीवन बिता रहे हैं, उन कारागारों को गिराने में हमें महान बल मिलेगा और आत्म स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त होगा।

प्रश्न— कई लोग कहते हैं कि आत्मा के अज्ञान कर हमारी क्या हानि होती है ? खाने-पीने, धन कमाने वा संतान आदि पैदा करने में तो कोई बाधा नहीं पड़ती।

उत्तर— खाते-पीते और सन्तान आदि पैदा तो पशु-पक्षी भी करते हैं, पर वे अपने को पशु या पक्षीपने से अधिक नहीं पहचानते, वैसे मानुष भी अगर खान-पान आदि विषय भोगों में ही रुका रहा, तो 'मैं पुरुष हूं' 'मैं स्त्री हूँ' 'युवा हूँ' 'वृद्ध हूँ' इस से अपने अजर अमर आनन्द स्वरूप आत्मा से बेखबर ही रह जायेगा। तब कहा है:—

वक्त जागने का है तेरा, तूं खुश कर नींद क्यों सोया ?
जिन्हों संग प्यार था तेरा, उन्हों क्या खाक में डेरा,
न वो फिर करेंगे फेरा, तूं खुश कर नींद क्यों सोया ?

प्रश्न— विद्या कितने प्रकार की है ?

उत्तर–शास्त्रों में विद्या तीन प्रकार की कही हैं-शारीरिक,मानसिक और आत्मिक। १— जिस विद्या से शारीरिक आवश्यकताएं पूरी हों और व्यायाम ब्रह्मचर्य आदि स्वास्थ्य के नियमों का ज्ञान हो सके, उसे शारीरिक विद्या कहते हैं। २–मानसिक विद्या

अर्थात् मन की स्थिरता बढ़ाकर संकल्प सिद्धि से अपने कार्यों में सफलता पाने का ज्ञान हो सके, मन के उदासी को कैसे भगाइये। दिल दिमाग़ में उत्तम विचार धारा का प्रवाह कैसे बहाइये। वर्तमान समय में जड़ पदार्थों के आकर्षण शक्ति का ज़ोर दिनों दिन इतना बढ़ता जा रहा है, जो मनुष्य चेतन होते हुए भी मानसिक विद्या के बिना, अपने संकल्प के बनाये हुये भोग पदार्थों में ही जकड़ा जा रहा है। इस उल्टे प्रवाह में बहने से मनुष्य को मानसिक विद्या ही बचा सकती है।

३— आत्मिक विद्या (ब्रह्म विद्या) जिससे मानुष को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। आत्म-ज्ञान के बिना इन्सान एक मशीन की तरह है। अगर किसी से पूछा जाय कि तुम जो देख-सुन, चल-फिर रहे हो' वास्तव में तुम कौन हो ? तो उत्तर मिलेगा, कि बराबर मैं सब कुछ कर रहा हूँ पर पता नहीं कि मैं कौन हूँ ! ब्रह्म-विद्या के बिना जीव, न अपने को पहचानता है, न जन्म-मृत्यु आदि भय को निवृत्त कर सकता है। तब कहा है:—

भूला सब संसार देही मने आपको।
जन्में मरे दुःख सहे, छोड़े न अहंकार।

बिरले किस गुरुमुख किया, वास्तविक का विचार।
ब्रह्म विद्या के आधार, अविद्या का अन्त हुआ॥

ब्रह्मवेत्ता उदालक ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु द्वादश वर्ष पर्यन्त अपने माता-पिता के स्नेहवश अनपढ़ ही रहा। उसे सारा समय खेल-कूद में विवेक शून्य बिताते हुए देख कर

उद्दालक ऋषि ने श्वेतकेतु को एकांत में बुलाकर कहा कि "हे पुत्र! तू हमारे कुल में उत्पन्न होकर भी विद्याहीन होने के कारण अधम गति को प्राप्त हो रहा है। अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो तो इस गृह को त्याग कर, ब्रह्मचर्य व्रत्त को धारण कर किसी आचार्य की शरण में जाकर वेदों का अध्ययन करो।"

श्वेतकेतु पिता के मार्मिक वचनों को श्रवण कर अपने गृह का मोह त्याग कर किसी वेदवेता आचार्य की शरण में जाता भया। वहां २४ वर्ष पर्यन्त चारों वेद, अर्थ सहित षट अंगों का अध्ययन किया, परन्तु उपनिषद् वेदांत भाग का श्रवण मनन उससे न हो सका। जब आचार्य से आज्ञा पाकर श्वेतकेतु अपने गृह कूं आता भया, तब मार्ग विषे उसे यह विकल्प उठने लगे कि जैसे मैं वेदों के अर्थ कूं जान कर विद्वान भया हूँ, वैसे मेरा पिता वेदों के अर्थ कूं नहीं जानता होगा, क्योंकि मेरे को आचार्य ने शपथ खाकर कहा है कि जितनी विद्या हम जानते हैं, वह सम्पूर्ण तुम्हें अध्ययन कराई है, यांते मैं पिता से अवश्य अधिक विद्वान हूँ। इस प्रकार के विकल्पों कूं करता हुआ महान गर्व कूं प्राप्त भया। श्वेतकेतु जब अपने गृहविशे पिता उदालक ऋषि के समीप पहुंचा, तब पिता के ताईं नमस्कार मात्र भी न करता भया। उदालक ऋषि, पुत्र के अनुचित वर्ताव को देखकर या प्रकार कहता भया–"हे श्वेतकेतु! जिस विद्या की अधिकताकर तू नम्र भाव से रहित स्थंभ की नियाईं खड़ा है, क्या कभी तुमने अपने आचार्य से यह विद्या भी श्रवण की थी, कि जिस एक वस्तु के मनन करने से सर्व वस्तुओं का मनन हो जावे हैं जिस एक के ज्ञान से, सम्पूर्ण अज्ञात वस्तुओं का ज्ञान होवे हैं, और जिस एक के निश्चय होने पर सभी अनिश्चित विषय का निश्चय

हो जावे हैं ? हे पुत्र ! ऐसी कौन वस्तु है ? अगर तुम जानते हो तो हमारे प्रति वर्णन करो ।" पिता के वचनों कूं सुनकर श्वेतकेतु महान आश्चर्य कूं प्राप्त भया। उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाकर विद्या अभिमान से रहित हुआ अत्यन्त नम्र भाव से पिता कूं प्रणाम कर कहने लगा कि "हे भगवन! मैंने ऐसी विद्या अपने आचार्य से कभी नहीं सुनी। आप कृपा कर मेरे को इस दिव्य विद्या का उपदेश करो ।"

उपर्युक्त वचनो से ज्ञात होता है, कि ब्रह्म विद्या के उपदेश धारण किये बिना, चारों वेदों के अध्ययन करने से भी अद्वैत आत्म-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । तब कहा है:—

चाहे नित पढ़े, छे, चार अठारह मुख से ।
तप तीर्थ साधन करे, चाहे गुफा मांहि रहे ॥
बिना ब्रह्म-विद्या के; अविद्या मांहि बहे ।
कभी ना लहे, अनुभव आत्म–पद को ॥

दृ०:—एक मनुष्य को इञ्जीनीयरी का इम्तिहान देने पर जब नौकरी मिली तो बड़ा ही खुश हुआ और डियूटी पर आकर एक समय नाव में बैठ कर उस पार जा रहा था, तो रास्ते में नावक से पूछने लगा, कि "क्या तुम जानते हो कि इस बड़ी नदी में पानी कितना फुट गहरा है? मलाह ने उत्तर दिया, "नहीं हजूर ! हम अनपढ़ क्या जाने ! इञ्जीनीयर ने फिर पूछा "भला यह बताओ कि नदी से १ मिनट में कितने यूनिट पानी बह रहा है ?" नावक ने कहा' "यह तो बड़ी मुश्किल की बात है !" इञ्जीनीयर

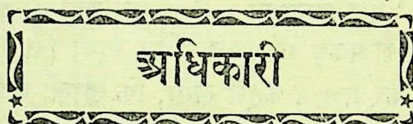
साहब जब किताबों की बातें करता मलाह की हंसी उड़ाने में व्यस्त था, तब ऐसा तूफान आ लगा, जो एकाएक वह नाव उलट गई। उस समय इञ्जानीयर को गोते खाता हुआ देख कर नावक के आश्चर्य की हद न रही। इञ्जीनीयर चिल्लाने लगा कि "मुझे बचाओ। मैं तैरना नहीं जानता।" तब मलाह ने उसे कंधे से पकड़ कर किनारे कर दिया। तब इञ्जीनियर बड़ा लज्जित हो कर मन में कहने लगा, कि खाली नदी के पानी की माप-तोल आदि समझ लेने से कोई नदी में डूबने से बच नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार इस संसार सागर में वेद शास्त्र आदिकों का अध्ययन एक होशियार इञ्जीनियर के समान बनाता है, परन्तु ब्रह्म विद्या की शिक्षा ग्रहण किये बिना कोई भी मोह माया के तूफान आने पर डूबने से बच नहीं सकता।

वेदांत कहता है कि साधारण विद्याओं से संसारिक पदार्थों का अज्ञान दूर होता है, पर ब्रह्म विद्या से अपने वास्तविक स्वरूप का अज्ञान नाश हो जाता है। जगत में लोग अविद्या अथवा अज्ञान उसे कहते हैं, जिसे व्यावहारिक पूरा ज्ञान न हो और वेदांत में मूल अज्ञान उसे कहते हैं, जिसे अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं है। तब कहा है:—

भूला जब तू आप से, तब से हुआ खराब।
रे रे कर रोने लगा, उतर गई सब आब॥
उतर गई सब आब, दरोदर खावे धक्के।
धावे कभी केदार खंड, पुनः जावे मक्के॥

कहे गिरधर कविराय, मोह ममता में फूल्यो ।
बकने लग्यो तूफान, जमा सब अपनी भूल्यो ॥

॥ ॐ तत्‌सत्‌ ॥



अधिकारी



प्रश्न—क्या ऐसी ब्रह्मविद्या के लिये सभी प्रकार के लोग अधिकारी हो सकते हैं ?

उत्तर—योग्य बनने के सिवाय योग्यता किसी को भी प्राप्त नहीं होती, इस लिए पहले अपनी कृपा अपने पर कर अधिकारी बनो तो सफलता खुद ब खुद प्राप्त होगी । कितने लोग अधिकारी कहलाने की इच्छा रखते हैं, पर साधन संपन्न नहीं हैं जो मन में आवे, वह कर बैठते हैं । थोड़े मात्र वेदान्त वचनों को सुन कर कोई कहने लगे, कि "हम निर्बन्धन हैं, वह एक प्रकार अपने को ठगना है । जब तक निज स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक यंत्रवत्‌ कठ-पुतली में स्वतंत्रता कहां ! जीवात्मा मुक्त स्वभाव तो है, परन्तु माया से ग्रासा हुआ, नाम रूप के अध्यास में फंसने से अपने को बध जाने हैं । जब तक अशुभ कर्मों का आवरण दूर नहीं हुआ, तब तक शुद्ध आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता ।

भगवान ने अर्जुन और दुर्योधन दोनों को उपदेश किया, पर अधिकारी अर्जुन ही निकला, क्योंकि वह जितेन्द्रिय और

साधन सम्पन्न था, बाकी दुर्योधन बाहरमुख अशुद्ध अन्तः करण के कारण उलटा भगवान से भी द्वेष करने लगा। इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मविद्या के धारण करने अर्थ, प्रथम अपने को साधन सम्पन अधिकारी बनाना अति आवश्यक है। तब कहा है:—

ज्ञान रसायन जिसको मिलया, सोइ न कबहूँ जाता।
बैठत साधन, चलत आराधन, संयम नेम निभाता॥

प्रश्न—ब्रह्मविद्या के धारण करने अर्थ किन साधनों की आश्यकता है?

उत्तर—चतुष्ट साधन वर्णन

१. विवेक, २. वैराग्य, ३. षट् सम्पत्ति, ४. मुमुक्षता।

१. विवक—जिस मनुष्य ने अपने जीवन का ध्येय, सर्व बन्धनों की निवृत और परमआनन्द की प्राप्ति समझा है। अपनी सारी आकांक्षाओं का आलय एक सत्य आत्मा को ही निश्चय किया है। ऐसा विवेकीजन प्रतिक्षण यही अपने से पूछता रहता है कि 'मैं कौन हूँ?' मुझे अपनी वास्तविकता पहचानने के लिए क्या कर्तव्य है? और कहां जाना है? जैसे हंस अपनी चोंच से खीर और नीर को अलग करे हैं, तैसे विवेकी, आत्मा और अनात्मा के पहचानने का विवेक करे हैं।

वेदान्त कहता है कि जिसकी बुद्धि, शरीर आदिकों पर रहती है उसे अन्तर आत्मा नहीं दिखाई देता—रज्जू सर्प की नियाई। जिसे रस्सी में साप दिखाई देता है, उसे रस्सी नहीं

दीख पड़ती और भ्रम के मिट जाने पर सांप कहां है? जैसे चक्कर में फिरने वाले को, अचल ध्रुव नहीं अनुभव होता, वैसे कुविचारों के चक्कर में फिरने वालों को अपने स्थिर आत्मा का बोध नहीं होता, जब तक वे एकांत में बैठ कर नित्यअनित्य का विवेक नहीं करते। तब तक जीवन में लाभ के बदले हानि उठानी पड़ती है। एक बार हरिद्वार में पिता पुत्र को दही दे कर आप पूरीयें लेने को गया और कह गया कि दही की बंदरों से रक्षा करना. पुत्र बंदरों को तो भगाने में लग गया परन्तु कुत्ते और कऊए आकर सारी दही खा कर खत्म कर गए। पिता ने जब पूछा कि तुम्ने कुत्ते और कऊओं से दही की रक्षा क्यों नहीं की? पुत्र ने कहा आपने बंदरों से दही बचाने के लिये कहा था मैं तो उसी आज्ञा में लगा हूआ था! फिर भी दही बची नहीं, पिता ने समझा इसने विवेक से काम नहीं लिया। ठीक इस प्रकार मनुष्य जीवन रूपी दही को विवेक किये बिना एक तरफ़ से बचाता है तो दूसरा तरफ से आलस परमाद वश उसे गंवा देता है। तब कहा है—

कहां से आया, कहां को जाना!
करना क्या है पिछे पछताना!
समझ सोच पग धरो सियाना!
जो होवे सागर तरने का!!

२. वैराग्य—जिस मार्ग को विवेक दृष्टि से दोष युक्त समझा है, उसे त्याग देने का नाम वैराग्य है। जैसे कसौटी पर

परखे हुये खोटे स्वर्ण को, सराफ ग्रहण नहीं करता, वैसे विवेक रूपी कसौटी पर परखे हुये अनात्म वस्तु में, वैराग्यवान फिर आसक्त नहीं होता। साधारण लोग जिन क्षणिक पदार्थों की खोज में सारा समय गवा बैठते हैं वैराग्यवान अपने को ऐसा करने से रोकता है। वह अपने से पूछता है—क्या हमारा जन्म सिर्फ खाने-सोने और रोने-धोने के लिये हुआ है? अथवा ऐसे पदार्थों की कामना करना जिससे अतृप्ति रूपी रोग बढ़ता ही जाय? क्योंकि बड़े २ धन सम्पत्ति आदि मिलने पर भी, न मन को शांति मिलती है, न वासनाओं का ही अन्त होता है। कितने लोग आराम के सब सामान मौजूद होने पर भी बेचैन होते दिखाई देते हैं और ऊँचे २ अधिकारों पर रहने वालों में भी कोई न कोई भय बना ही रहता है। वास्तव में विषय भोगों की प्राप्ति हमारे जीवन का ध्येय नहीं। वह समय अवश्य आवेगा, या तो विषय भोग न होंगे या यह शरीर ही न होगा। तब कहा है:—

आगाह अपनी मौत से, ऐसी बशर नहीं।
सामान सौ बरस का, कल की खबर नहीं॥

परमार्थ उनति में वैराग्य एक मुख्य साधन है। जिस कर और सभ साधन सुगमता से सिद्ध हो सकते हैं।

खाने पीने में वैराग्य, मान, सन्मान में वैराग्य और आलस प्रमाद से वैराग्य क्योंकि वैराग्य के बिना मन थोड़ी २ बातों में रुक जाता है। एकांत में बैठा हुआ मनुष्य भी वैराग्य के बिना चित की एकाग्रता का लाभ नहीं उठा सकता। वैराग्य

बड़े बिरेक के समान है, कितना भी कीमती तेज चलने वाला मोटर क्यों न हो, परन्तु बिरेक के बिना वो किस काम का, उसके चलने में तो बड़ा भय और खतरा बना रहता है। तैसे मनुष्य कितना भी पढ़ा-लिखा बिचारवान क्यों न हो, पर वैराग्य रूपी बिरेक के बिना थोड़ी २ बात में खतरा बना रहता है। और कभी २ ठोकरे खा कर विषय रूपी खाही में जा गिरने से जीवन बेकार हो जाता है। तब कहा है:—

बिन वैराग्य किसे सुख नाही।
ब्रह्म लोक ले जे चल जाई॥
धन जोभन को है सुख एसो
नीद माह सुपने के जैसो॥
जागे कुछ न रहाई।॥ ॐ॥

३. षट् सम्पत्ति—अर्थात् छः प्रकार के अमोलय साधन १—शम २—दम ३—उपरान्ति ४—तितिक्षा ५—श्रद्धा ६— समाधान।

१. शम—अर्थात् मानुष का मन, जो अंधेरे में टटोलने के समान कभी किसी चीज को पकड़ता है, तो कभी किसी वस्तु को छोड़ता है। मन के अन्तर मुख हुए बिना कभी उसे विश्राम न मिलेगा। ऐसा निश्चय कर, जो सदा मन को योगाभ्यास आदि उपायों से एकाग्र वा स्थिर करने का यत्न करता है, इसी का नाम शम है।

वेदान्त कहता है, कि जैसे मन विषयों की इच्छा कर बाहर प्रवृत होता है, वैसे आत्मा सुख की अभिलाषा कर अन्तर मुख भी हो सकता है। सिर्फ इरादे बदलने की देर है। जैसे गुलाब के फूल में सुगन्ध भीतर से ही बाहर आती है, वैसे मन रूपी फूल में आनन्द की सुगन्ध अन्दर वाली ही भ्रमवश बाहर से आती प्रतती होती है। जैसे कहा है:—

खस्तूरी बसे मृग के माही, वन बन ढूँढत खोजन जाई।
होइ रह्यो हैरान; रे मन अपना रूप पछाण ॥

अर्थात् जैसे खस्तूरी होती मृग के नाभि में है, परन्तु भ्रमवश उसे बन २ में ढूंढता हुआ शेर के मुख में जाकर पड़ता है, वैसे मन रूपी मृग को भी आनन्द अपने अन्दर से प्राप्त होता है, पर मन उसे भ्रमवश विषय रूपी जंगल में ढूंढता हुआ काल रूपी शेर के मुख में जा पड़ता है। ऐसी दौड़ धूप से मन को विवेक कर सावधान करना चाहिए कि किसी से सुख की आशा न रखो। यदि तुम ध्यान से देखोगे तो तुम्हें जान पड़ेगा कि सदा दूसरों से सुख मांगते रहने पर वह मिला किसी से भी नहीं। जब भी विश्रान्ती मिली है वो अतिमुख होने से ही मिली है। फिर दूसरों से कुछ पाने की आशा क्यों करते हो। इस प्रकार शम अवस्था में स्थर किया हुआ मन ही ब्रह्म विद्या के मनन करने के योग्य होता है॥ ॐ॥

२. दम——अपनी कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इन्द्रियों को सदा वश में रखने का नाम दम है बेकाबू इन्द्रिये मनुष्य की

शक्ति को विषयों में व्यर्थ खर्च कर डालती है। जहां सुख का लेश भी नहीं होता, वहां इन्द्रियों वश मनुष्य सुख को खोजता फिरता है। जैसे पतंग बिना सोचे प्रकाश पर टूट पड़ता है, और वहां ही जल मरता है वैसे इन्द्रियो अधीन जीव, बिना, सोचे विषयों पर टूट पड़ता है कि हमें तृप्ति मिलेगी और तब तक ऐसा करता रहता है, जब तक येह शरीर छिन्न-भिन्न होकर नहीं मर मिटता। यही माया है!

वेदान्त कहता है कि सिर्फ विषय भोगों का जीवन पाशवक जीवन है। अगर उसे पेट भर खाने को न मिले, तो बड़ा दुखी होता है। शरीर में कोई उत्तेजना या विकार उत्पन्न हो, तो उसके वशवर्त्ती हो जाता है। ऐसे मिथ्या देह अभिमान के कारण, मनुष्य, पशु से भी घोर अत्याचारी बन जाता है, इस लिये साधक को भूख के समय खाना, जरूरत के समय बोलना, अच्छे विचारों को सुनना, वीर्य रक्षा का ध्यान रखना, और कर्म इन्द्रियों से जितना हो सके उन्हें निषकाम सेवा में लगाना चाहिये। इस प्रकार ज्यों २ मनुष्य उन्नति करता जाता है, त्यों २ उसके स्वतन्त्रताकी सीमा बढ़ती जाती है। जब देखो कि मेरे नेत्र सुन्दर रूप में, जिह्वा रसीले रसों में और त्वचा स्पर्श आदिकों के अधीन नहीं हो सकती, तब समझो कि अब इन्द्रिय दमन हो चुका। ॐ

३. उपरान्ति—अर्थात् जीवन के हर एक कार्य को यथा लाभ संतोष मान कर करना। किसी भी हानि-लाभ, संयोग-वियोग में विचलित न होना, क्योंकि यह संसार अनर्वचनी

है, कभी भी एक सा नहीं रहता। जैसे इसमें हांसी लाने की शक्ति हैं, वैसे इस में रोआइ देने की शक्ति भी छिपी हुई है। एक के जाने पर दूसरी अवस्था आकर आसन ग्रहण करती है, इसलिये अध्यात्मिक उन्नति के अधिकारा को संसार सम्बन्धी बातों में विचलित न होने के अर्थ, उपरान्ति साधन की बड़ी आवश्यकता है। तब कहा है:—

आदर तथा अनादर, वचन बुरे और भल्ले।
अप्रभुता-प्रभुता जगत की, धर जूते के तले॥
धर जूते तले, राग पुनः द्वेष निवारो।
महा सिंधु को तरो, डूबो क्यों, शुष्क किनारो॥
कहे गिरधर कविराय, पहर समता की चादर।
हर्ष-शोक कर दूर, तथा दुनियां का आदर॥ ॐ

४. तितिक्षा—अर्थात् शीत-उष्ण, भूख-प्यास अदि द्वंदों के सहन करने की शक्ति। तितिक्षा के बिना परमार्थ में एक क़दम उठाना भी कठिन लगता है। कितने लोग विवेक वैराग्य अदि साधनों को थोड़े मात्र कठिनाइयों को देखकर घबरा जाते हैं और आगे बढ़ने का उत्साह खो बैठते हैं।

द०—एक मनुष्य शूरवीरों की समाज में दाखिल होना चाहता था। उस समाज का पहला नियम था बांह पर शेर की तस्वीर उकरवाना। जब उसकी बांह पर सुईयें चुभ जाने लगीं, तब वह चिल्ला कर कहने लगा कि ठहरो! यह तुम क्या छाप रहे हो? तो उत्तर मिला, कि अभी तो शेर की पूंछ बना रहे हैं। उसने कहा—पूंछ की क्या ज़रूरत? आज कल तो अच्छे

अच्छे कुत्तों की भी पूंछ काटी जाती हैं थोड़ा सा रुक कर फिर उसे सुई चुभोई गई, तो बोल उठा कि सुनाओ तो सही अब क्या छाप रहे हो ? उत्तर मिला कि शेर की गर्दन। वह कहने लगा गर्दन तो घोड़े की शानदार होती है, शेर की गर्दन से क्या काम ? इस प्रकार जब आखें छपने लगी तो कहने लगा बन्द करो, आंखें तो हिरन की सुन्दर होती हैं। तो छपने वाले ने हाथ उठा लिया, और कहा—ऐसा अंधा शेर, लुंडा शेर और बे हिम्मत शेर छपाने वालों की हमारी समाज में कोई जगह नहीं।

ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक साधन का मैदान, खास शूरवीरों का मैदान है, जहां खुशी से कष्टों को सहन कर आगे बढ़ना पड़ता है। जो साधन सम्पत्ति की परीक्षा देते समय, बहाना देकर बचना चाहता है, वह ममोक्षयों के मैदान से असली सफलता का लाभ नहीं उठा सकता। तब कहा है:—

मनूआ कोई पीवे ममोक्ष प्यासा।
सीस उतार धरे धरनी पर करे न तन की आशा।
ऐसो महांगो अमृत बिकवे, छः ऋतु बारहं मासा।
मूल करे सो पीवत नाहीं, तोलत छूटे वासा॥

वेदान्त कहता है कि जिसे अनित्यता से हट कर अनंतता में आना है, उसे साधारण अध्यासों के छोड़ने में क्या कष्ट समझना चाहिये ? इस लिये उठो! जागो ! निराश मत हो ! मार्ग कितना भी कठिन क्यों न हो, तो भी साहस न छोड़ो। संस्कृत में भी कहावत है:—

कार्य साध्यामि, शरीर पात्यामि !

अर्थात अपने लक्ष पर अवश्य पहुँचूंगा, चाहे शरीर का अन्त ही क्यों न हो जाये। ॐ

५. श्रद्धा—ब्रह्मविद्या के अधिकारी को. ब्रह्मवेत्ता गुरु के समीप पूर्ण श्रद्धायुक्त होकर जाना चाहिये। श्रद्धावान ही अपने सेवा, नम्रभाव आदि गुणों से, गुरुजनों को प्रसन्न कर सुखेन ही आत्म लाभ को प्राप्त करता है। तब कहा है :—

ऋषि मुनि जन की यही रीति, श्रद्धा देख करें तब प्रीति।

वेदान्त कहता है कि ममोक्षु की जितनी श्रद्धा मोक्ष पाने में होती है, अगर उतनी श्रद्धा ब्रह्मवेत्ता गुरू के वचनों में होवे, तो इस जन्म विषे ही परम कल्याण की प्राप्ति कर सकता है। श्रुति भी कहती है :—

'श्रद्धावान लभते ज्ञान' अर्थात श्रद्धा, कामधेनु गऊ के समान है। उसका आहार गुरू वचनों का श्रवण, और मनन है। जिससे निदृध्यासन रूपी दूध की प्राप्ति होवे हैं। ऐसे दूध को वैराग्य रूपी बर्तन में रखना चाहिए और ध्यान रूपी अग्नि पर चढ़ा कर, फिर धैर्य रूपी भूमि पर दही जमाना चाहिए। तब बुद्धि रूपी मथनी को विचार रूपी रस्सी डाल कर, उसे मथना चाहिये। जब विवेक रूपी मक्खन निकले, तब उसे समता रूपी सूर्य के संमुख रखें। जिस समय वह द्वैत रूपी छाछ से रहित शुद्ध ज्ञान रूपी घृत निकल आवे, तो उसे अपने दिल दिमाग

रूपी बोतलों में भर देने से, फिर संसार का कोई भी दुःख संताप स्पर्श न कर सकेगा। तब कहा है:—

श्रद्धा सम को धन नहीं, सुख नहीं ज्ञान समान।
आत्मबल सम बल नहीं, धर कर देखो ध्यान॥

वेदान्त कहता है— जो ब्रह्मवेत्ता गुरू को ब्रह्म स्वरूप जान कर श्रद्धा नहीं करता, वह अपने आत्मा को ब्रह्म स्वरूप कैसे निश्चय कर सकता है? जो ज्ञान दाता गुरू के समीप निष्काम और निरभिमान वर्ताव नहीं कर सकता, तो फिर साधारण लोगों से सचाई और समता भाव का वर्ताव कैसे कर सकेगा? वास्तव में श्रद्धा सम्पन्न अधिकारी के लिए ब्रह्म-वेत्ता गुरू खरे-खोटे स्वभाव परखने की कसौटी के समान है। तब कहा हैं:—

सत्गुरु बड़ा सराफ है, परखे खरा और खोट।
भवसागर से काढ़ के, राखे अपनी ओट॥

द०—सामवेद के छांदोग्य उपनिषद् में वर्णन है, कि एक समय सत्काम नामा बालक. उदालक ऋषि के समीप आ कर, दंडवत प्रणाम कर, आध्यात्म शिक्षा के लिए नम्रभाव से प्रार्थना करने लगा। उदालक ऋषि सत्काम की पूर्ण श्रद्धा की परीक्षा लेने अर्थ कहते भये, कि "हे सत्काम! इन चार सौ गऊओं को तुम बन में चराने के अर्थ ले जाओ। जब यह गऊएं चार सौ से बढ़ कर पूरा एक सहस्त्र हो जाय, तब तुम यहां लौट कर आना, तो हम तुम्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश करेंगे।"

सत्काम बड़ी प्रसन्नता पूर्वक गुरु की आज्ञानुसार उन चार सौ गऊओं को ले कर वन में जाता भया। जहां सुन्दर घास के चारागाह देखता, वहां गौओं सहित कुछ काल रह जाता। जो दुर्बल गऊएँ होतीं, उन्हें सत्कास अपने हाथों से कोमल २ घास काट कर आन खिलाता तथा ठीक समय पर उनको जल पिलाता। इस प्रकार श्रद्धा पूर्वक गऊओं को चराते और सेवा करते जब सत्कामा को बहुत काल वन में बीत चुका तब एक दिन गऊओं के समूह में से वर्षभ (बैल) बोल उठा, कि "हे सत्काम। अब हम पूरा एक सहंस्त्र हो चुके हैं, इसलिये तुम शीघ्र अपने गुरु के आश्रम में हम सभ को ले चलो और हे सत्काम! हम तुम्हारी श्रद्धा भक्ति को देख कर ब्रह्म परमात्मा के एक पाद का वर्णन करते हैं। तुम सावधान हो कर सनो—'पूर्व, पश्चिम. उत्तर और दक्षिण, यह चारों दिशाएँ. जो अनन्त विस्तार वाली दिखाई दे रही हैं, उन्हें तुम ब्रह्म का एक पाद समझो।' आगे तुम को अग्नि देवता उपदेश करेगा।" सत्काम बैल के वचनों को सन कर महान आश्यर्च को प्राप्त भया और परमात्मा को सब दशों दिशाओं में पूर्ण निश्चय कर, प्रात: काल होते ही उस बन में से गऊओं को लेकर अपने-गुरु के आश्रम को गमन करता भया। रास्ते में जब सायंकाल का समय हुआ; तो सत्काम सम्पूर्ण गऊओं को एकत्र कर स्वयं संध्या वंदन आदि करने में लग गया। तब अग्नि देवता ने प्रगट होकर कहा—"हे सत्काम! अब मैं तुम्हारे ताई ब्रह्म के दूसरे पाद का वर्णन करता हुँ। 'आकाश, पृथ्वी, समुद्र और

पाताल, इन चारों को ब्रह्म का दूसरा पाद जानो।' शेष तुम्हारे को हंस पत्ती उपदेश करेगा।"

सत्काम अग्नि देवता के वचनों कूँ सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और आकाश आदि चारों को ब्रह्म स्वरूप चिन्तवन करता हुआ, निर्भय होकर आगे चलता भया। फिर प्रातःकाल सत्काम को हंस पत्ती ने संमुख आकर कहा—"हे सत्काम ! अब मैं तुम्हारे तांई ब्रह्म के तीसरे पाद का वर्णन करता हूँ। तुम अपने नेत्र, कान, नासिका और मन, इन चारों को ब्रह्म का तीसरा पाद निश्चय करो।' विशेष ब्रह्म के साक्षात स्वरूप का उपदेश, तुम्हारे को अपने गुरु उदालक ऋषि करेंगे।" यह सुन कर सत्काम अपने को धन्य २ मानता हुआ अपने मन-इन्द्रियों में परमात्मा के चेतन ज्ञान स्वरूप का अनुभव करता हुआ, जब गुरु के समीप आ पहुँचा, तो अत्यन्त श्रद्धा युक्त, चरणों में गिर कर प्रणाम किया। उदालक ऋषि सत्काम को गले लगा कर कहने लगे, कि "हे सत्काम ! तूं बड़ा ही आनन्दित और प्रसन्नचित्त दिखाई दे रहा है, क्या तुम्हें वन विषे कोई दिव्य पदार्थ प्राप्त हुआ है ?" सत्काम निम्रभाव से कहने लगा, कि "हे भगवन् ! आपकी कृपा से प्रथम मेरे को गऊओं के बीच में से ब्रह्म का उपदेश मिला। फिर रास्ते में अग्नि देवता ने उपदेश दिया और अन्त में हंस ने ब्रह्म का परोक्ष वर्णन कर कहा, कि विशेष ब्रह्म का साक्षात् उपदेश तुम्हारे को अपने गुरुदेव करेंगे।" उदालक ऋषि सत्काम की इतनी निष्काम सेवा और श्रद्धा भक्ति को देख कर, उसे ब्रह्म विद्य

का सर्व अंग सम्पन्न उपदेश देकर कृतार्थ करता भया। तब कहा है:—

गुरु समान दाता नहीं, याचक श्रद्धावान।
कोट कर्म कर ना मिले, सो दीनो गुरुदान॥

वेदान्त कहता है, कि दुन्यवी पदार्थ देने पर स्वार्थी लोग प्रसन्न होते हैं और मान सम्मान मिलने पर खुशामंदी लोग खुश होते हैं, पर महापुरुष श्रद्धा सम्पन्न अधिकारी को देख कर अपने से मिला लेते हैं। तब कहा है:—

पारस और संतों में, बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे; वह करे आप समान॥

दृ०—योग वशिष्ट में वर्णन है, कि एक सयम श्री वेद-व्यास जी महाराज, अपने पुत्र शुकदेव को ब्रह्मविद्या का उपदेश दे रहे थे. परन्तु शुकदेव में पिता पुत्र की भावना से श्रद्धा में न्यूनता देख कर वेदव्यास उपदेश देने से उपराम हो गये और कहने लगे. कि "हे पुत्र! मैं इतना तत्त्वज्ञ नहीं हूँ, जितना कि राजा जनक है, इसलिये तुम उनके यहां जाकर ब्रह्मविद्या को ग्रहण करो।" जब शुकदेव मुनि राजा जनक के दरवाजे पर पहुंचे, तब वहां भी, उनको श्रद्धा की परीक्षा अर्थ, इकीस दिन तीन स्थानों पर खड़ा होना पड़ा अर्थात् सात दिन दरवाज़े के बाहर, सात दिन अन्दर आँगन में और सात दिन राज महलों के समी ।

इससे ज्ञात होता है कि जब शुकदेव जैसे उत्तम अधि-कारी को भी, ब्रह्मबिद्या के प्राप्ति अर्थ श्रद्धा की इतनी परीक्षा

देनी पड़ी, तब साधारण साधक को कितना श्रद्धा सम्पन्न होना चाहिये ? यह प्रिय पाठकगण स्वयं सोच सकते हैं। तब कहा:—

आशा–निराशा तजे, मोह तजे और मान।
हर्ष–शोक दोऊ तजे, सो धारे गुर ज्ञान॥

६. समाधान—–अर्थात् वेदान्त के सिद्धांत को ब्रह्मवेत्ता गुरू द्वारा संशय-विपर्यय से रहित निश्चय करना, कि 'रते ज्ञानं न मुक्ति,' अर्थात् आत्म ज्ञान के बिना और किसी भी उपाय करके, विदेह मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा जान कर जो कभी भी छोटे–मोटे मत मतांत्रों के तर्क–वितर्कों से अपने चित्त को विचलित होने नहीं देता।

वेदान्त कहता है कि इस विश्व का उपादान और निमित्त कारण एक ही परमात्मा है, वह ही अविद्या में संकुचित आभास रूप में जीव प्रतीत हो रहा है, पुनः वही विकसित माया में ईश्वर रूप में दिखाई देता है और वही फिर सभ गुण–स्वभावों को कल्पित निश्चय कर, अपनेको ब्रह्मस्वरूप अनुभव करता है। यही वास्तविक रहस्य है। हे भगवान ! तू ही सभ में है और तू ही सर्व कुछ है, तेरे से भिन्न कुछ भी नहीं ! इस समाधान से जिज्ञासु के बुद्धि को बड़ी शान्ति मिलती है। तब कहा :—

तोड़े समझें आज, तोड़े समझें जन्म अनेक।
जब समझें, तब समझ ले, तुलसी आत्म एक॥

मोक्ष इच्छा



अर्थात् प्रति दिन गुरु और परमेश्वर के आगे यही प्रार्थना करते रहना, कि मेरा जन्म मरण का दुःख कब दूर होगा? मृत्यु नित्य ही संसार से लोगों को ढो २ कर ले जा रहा है, फिर हम कैसे समझें कि अजर-अमर रहेंगे? एक बार यक्ष ने युधिष्टर से पूछा कि पृथ्वी पर सब से अधिक अचम्भा क्या देखा? युधिष्टर ने उत्तर दिया कि संसार में सभ मरते जा रहे हैं; फिर भी लोग यह समझ बैठे हैं, कि हम अमर हैं!

वेदान्त कहता है, कि मानुष तब तक अमर नहीं होता जब तक प्राकृति के गुण-स्वभावों से अपने को अलग अनुभव नहीं करता इसलिये अधिकारी को अपनी मोक्ष इच्छा प्रबल रख कर, प्राकृति के बन्धनों से बाहर निकलने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये। जैसे हाथी के पांव में सभ के पांव आ जाते हैं, वैसे मोक्ष इच्छा के भीतर और सभ इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं।

वेदान्त कहता है कि आप और इच्छा क्यों करते हो? आप के पास आगे ही सभ कुछ मौजूद है। यदि कोई राजा पागल हो जावे और अपनी राजधानी में राजा को ढूंढता फिरे, तो उसे कभी भी राजा न मिलेगा। क्योंकि राजा तो वो स्वयं है

चाहे वह राज के गांव २ में फिरे, घर २ में ढूंढे चारों ओर चिलाता रोता फिरे, पर राजा उसे न मिलेगा। कारण यह है कि राजा तो वह आप ही है, इसलिए यही अच्छा होगा कि आप अपने को जान जाये। सुख स्वतंत्रता का भण्डार तुम्हारे भीतर है उसे व्यर्थ ढूंढने की बात छोड़ देओ फिर सारा दृश्य बदल जायेगा, और यह संसार नित्य का बन्दीग्रह न हो कर रंग भूमि आनन्द लोक बन जायेगा तब कहा :—

है चाह फकत निज चेतन की,
और किसी की चाह नहीं।
हम राह उसी से रखते हैं,
और किसी से राह नही॥
कुछ जोर नहीं, कुछ जुल्म नहीं,
दाद नहीं फरियाद नहीं।
है जितनी बातें दुनियां की,
सभ भूल गई कुछ याद नहीं॥

॥ ॐ आनन्द ॥



ब्रह्मवेता गुरु



प्रश्न—ममोक्षू को ऐसी मोक्ष रूप ब्रह्म विद्या—किस शास्त्र के पठन अथवा ध्यानस्मरण के अनुष्ठान से प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर—साधन सम्पन्न अधिकारी को केवल ब्रह्मवेता गुरु की शरण में जाकर मुक्त स्वरूप आत्मा का आयरोक्ष साक्षात्कार प्राप्त करना है।

प्रश्न—परोक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—परमात्मा के सिर्फ अस्तित्व के मानने का नाम परोक्ष ज्ञान और परमात्मा को अपने आत्म स्वरूप में साक्षात् करने का नाम अपरोक्ष ज्ञान है, जैसे किसी ने सुन रखा हो। कि पृथ्वी के अन्दर जल है और दूसरे नेपृथ्वी खोद कर उसी जल से प्यास बुझाई हो, उन दोनों के बीच में रात दिन का अन्तर होता है, क्योंकि परोक्ष ज्ञानी सिर्फ इस विश्वास पर खड़ा है, कि परमात्मा है, और अपरोक्ष ज्ञानी हाथ पर आंवले की तरह परमात्मा को अपना आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव करता है। जैसे लकड़ी में अग्नि सुन लेने से, शीत के कष्ट की निवृति नहीं होती, जब तक लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित न की जाय वैसे मेरे में परमात्मा हैं ? यह सिर्फ कहने से परमात्मा अपना आत्मा होकर नहीं भसता; जब तक प्रत्यक्ष उसे अपने

में अभेद साक्षात्कार न किया जाय तब कहा है-

अगरचि दिल्वर पास है, बिन जुस्तिजू मिलता नहीं ।
दूध से मखन जो चाहो, तो बिलौना चाहिये ॥

प्रश्न—ऐसा ब्रह्म का अप्रोक्ष साक्षात्कार किस प्रकार प्राप्त होवे हैं ?

उत्तर—जैसे अपने मुख को प्रत्क्ष देखने के लिये तीन चीज़ों की जरूरत पड़ती है—१. नेत्र २. दर्पण ३. प्रकाश। अगर तीनों में से एक भी कम है, तो अपना मुख स्पष्ट दिखाई नहीं देता।

ठीक इसी प्रकार अपने असली आत्म-स्वरूप के अपरोक्ष ज्ञान अर्थ तीन उपायों की आवश्यकता है- १. शुद्ध अन्तःकरण रूपी दर्पण २. सत्य विवेक रूपी नेत्र ३. ब्रह्मवेत्ता गुरू रूपी प्रकाश। अगर इन तीनों में से अन्तःकरण रूपी दर्पण तो साफ हो. मगर विवेक रूपी नेत्र नहीं खुले अथवा विवेक रूपी नेत्र खुले हैं, परन्तु ब्रह्मवेत्ता गुरू का ज्ञान प्रकाश नहीं मिला, तो जैसे अंधकार में दर्पण और नेत्र होते हुये भी कुछ दिखाई नहीं देता, वैसे जिज्ञासु का अन्तःकरण शुद्ध होते हुए और विवेक रूपी नेत्र खुलते हुये भी ब्रह्मवेत्ता गुरू के ज्ञान प्रकाश बिना, अपरोक्ष आत्म साक्षात्कार का लाभ प्राप्त नहीं होता। तब कहा है:—

केते चड़े चंन्द्रमा, सूरज चड़े हज़ार ।
एते चांदण होदियां, पर गुरु बिन घोर अंकार ॥

अर्थात् मानुष के हृदय में जो आत्म का अज्ञान रूपी अंधेरा है, उसे एक चंद्रमां तो क्या, हज़ारों सूर्यों का प्रकाश भी ब्रह्मवेत्ता गुरू के ज्ञान प्रकाश किये बिना, वे निवृत नहीं कर सकते ।

प्रश्न—ब्रह्मवेद्या गुरू किसे कहे हैं ?

उत्तर—जो ब्रह्मनेष्टी और ब्रह्मश्रोत्री हो, अर्थात् जिसे जीव और ब्रह्म में कोई भेद प्रतीत नहीं होता और अपना आत्मा ही ब्रह्मकार भासता है उसे ब्रह्मनेष्टी कहते हैं और जो वेद-वेदांत के अनुसार 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के गोप्य आशय को स्पष्ट कर समझाने में समर्थ हो, उसे ब्रह्म श्रोत्री कहे हैं। जैसे तीक्ष्ण वेग वाली नदी में एक अनतारू मनुष्य गोते खाता वहा जा रहा था। उसे देख तो बहुत रहे थे पर निकाल कर, बाहर करने में वही समथ हुआ जो तारू और ताकतवर था, क्योंकि ताकत के बिना, तारू भी दूसरे का खतरा उठा नहीं सकता और सिर्फ ताकतवर तो आप भी तर नहीं सकता तो दूसरे के तारने की बात ही क्या ! ठीक इसी प्रकार माया रूपी तीखे वेग वाली नदी में बहते हुए जिज्ञासु का वही महापुरुष उद्धार कर सकता है, जो ब्रह्मनेष्टा सम्पन्न-ब्रह्मश्रोत्री है। सिर्फ नाम-मात्र गुरु धारण करने से कोई मोक्ष लाभ नहीं मिल सकता। तब कहा है:—

श्रोता! आज कल गुरुओं के लश्कर फिरें हज़ार।
वेद कहत उसको गुरु, जो देवे ब्रह्म विचार॥

प्रश्न—क्या ब्रह्मश्रोत्री ही ब्रह्मनेष्टी नहीं हो सकता ?

उत्तर—ऋग्वेद के कोशीतक उपनिषद् में एक बालाकी

नाम विद्वान् का वर्नन आता हैं, जो चारों वेद और षट् शास्त्रों का भारी पंडित था. पर ब्रह्मनेष्ठी न था। तो भी उसने देश देशांत्रों में घूम कर अनेक विद्वानों को अपने शास्त्रार्थ के बल से पराजित किया था। एक समय वह बालाकी पंडित काशी के अजातशत्रु राजा के दरबार में जा पहुँचा और राजा को सम्बोधन कर कहा—मैं तुम्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश देने आया हूँ. इसके लिये आप अपना कोई समय नियत करो। राजा ने ब्रह्मविद्या श्रवण करने में बड़ी श्रद्धा दिखाई वासत्व में वह आप ब्रह्मनेष्ठी था। उसने अपने प्रतिज्ञा अनसवार एक सहंस्र सुन्दर गऊओं का दान दे कर बालाकी ब्राह्मण को कहा, कि अब आप ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिये। फिर तो बालाकी पंडित ने सभा में बड़ी विद्वता पूर्वक वेद शास्त्रों के अनुसार ब्रह्म परमात्मा के परोक्ष स्वरूप का वर्णन किया, जिसे सभा के लोग सुन कर बड़े हर्ष को प्राप्त हुये, परन्तु राजा अजातशत्रु जो स्वयं ब्रह्मनेष्ठी था। वह बालाकी को हाथ के इशारे से निवारण कर उसे जना रहा था, कि यह ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का वर्णन नहीं है; यह तो परमात्मा के तटस्थ लक्षणों का वर्णन है। तुम्हारी ब्रह्मविद्या के उपदेश देवे की प्रतिज्ञा थी. वह भंग हो रही है। बालाकी पंडित राजा के सावधान करने पर अपनी अनभिज्ञता पर बड़ा ही लज्जित हुआ और अन्त में मुख नीचे कर ज्यादा कहने से मौन हो गया। ऐसी अवस्था में उसे देख कर राजा कहने लगे, हे बालाकी! अगर तुमने वेदों का अध्यन करके सारा जीवन केवल शास्त्रार्थ करने में बिता रहा है, तो इससे तुम्हें किचत मात्र भी शान्ति न होगी।

अब किसी ब्रह्मवेत्ता गुरु की शरण में जा कर, उन्हों से ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करो, नहीं तो यह विद्या अभिमान तुम्हें जन्म-मृत्यु रूपी भय से मुक्त न होने देगा। बालाकि राजा अजातशत्रु के वचन सुन कर मन ही मन में विचारने लगा, कि अब तक मैं ने जितने विद्वानो से शास्त्रार्थ किया है, उन्हों में से किसी ने भी मेरे अर्द्ध परबोधता को नहीं पहचाना, जैसे आज राजा अजातशत्रु ने पहचाना है। इसी से ज्ञात् होता है कि यह राजा पूर्ण ब्रह्म नेष्ठी है। शास्त्रों में ब्रह्मनेष्ठी ज्ञानवानों का स्वसम वेद लक्षण कहा है अर्थात् वे किसी बाहरी लक्षणों से पहचाने नहीं जाते तो भी राजा ने अपूर्व उदारता, अक्रोधता और मेरे जैसे विद्या अभिमानी के उपदेश श्रवण करने में कितनी गंभीरता दिखाई है! ऐसे ब्रह्मवेत्ता अपने वर्णाश्रम में मर्यादा पूर्वक व्यवहार कार्य को करते हुए जल में कमल की नियाई निर्लेप रहते हैं। तब कहा है:—

ज्ञानी रूप अनेक, धारें बाजीगर ज्यां।
अन्तर आत्म राम की, इक टिक रखें टेक॥
'स्वामी' कहे संसार में वरतें सहित विवेक!
चाहे भोगें भोग अनेक, तां भी न्यारे रहें नभ ज़ां॥

बालाकि पंडित राजा अजातशत्रु में अत्यन्त श्रद्धायुक्त हुआ, ब्रह्म विद्या उपदेश ग्रहण करने अर्थ नम्र भाव से प्रार्थना करने लगा, कि हे भगवन! आपने ही मेरे विद्या अभिमान को निवृत किया है, इस लिए मैं आपको ही गुरू धारण कर

कृतार्थ होना चाहता हूँ। अगर मैं आप जैसे ब्रह्मनेष्ठी गुरू से विमुख होकर और किसी बड़े त्यागी ज्ञानवान को जाकर गुरू धारण किया, तो मेरे को कृतघ्नता का भारी दोष लगेगा। अब कृपा कर आप ही मेरा उद्धार करें।

राजा अजात शत्रु ने बालाकी पंडित का इतना नम्र भाव देख कर, ब्रह्मविद्या का उपदेश तो किया, परन्तु गुरू भाव से नहीं, दाता भाव से ज्ञान का दान दिया, क्योंकि बालाकी ब्राह्मण था।

इसी से ज्ञात हुआ कि यद्यपि बालाकी इतना विद्वान ब्रह्म श्रोत्री था, तथापि उसे ब्रह्मनेष्ठीपना, ब्रह्मवेता राजा अजातशत्रु के उपदेश से ही प्राप्त हुआ। तब कहा है:—

नहीं हाजत पड़हण पड़हावण दी,
सिखु रम्ज़ विजूद विञावण दी।
अखरां दे विचि जो कोई अड़िया,
प्रेम दी चाड़ही मूल न चड़िहिया,
इस बाती दा इलिमु जो पड़िहिया;
मौज उन्हां सिर सावण दी॥

वेदान्त कहता हैं कि ब्रह्मनेष्ठी गुरू के शरण में जाने बिना किसी के कहे कहावे पर दिखावे का गुरू धारण करने से मूल अज्ञान का नाश नहीं हो सकता शुद्ध अन्तःकरण वाले जिज्ञासु को ब्रह्मवेता गुरू ही इस भवसागर को ब्रह्मसागर

के रूप में अनुभव कराकर सम्पूर्ण संचित कर्मों के भारी बंधनों से मुक्त कर देता है। तब कहा:—

गावें गावें हौं फिरां, सन्तां वड़ा सुकार।
जिसदे तलब मिलण दी, उस दा बड़ा डुकार॥

प्रश्न—मूला अज्ञान और तूला अज्ञान किसे कहे हैं?

उत्तर—मूल जो अपना सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है उसके अज्ञान कूं मूला अज्ञान कहे हैं और जगत के जड़ पदार्थों के गुण-स्वभावों कूं न जानने का नाम तूला अज्ञान है। मूला अज्ञान ब्रह्मवेत्ता गुरू के उपदेश से निवृत होवे हैं और तूला अज्ञान जगत के अनेक पदार्थों के जानने पर भी, किसी न किसी पदार्थ के विषय में अज्ञान बना ही रहता है. क्योंकि माया रचित असंख्य पदार्थ हैं; और सत्य एक ही पूर्ण है, जिसका एक बार अज्ञान निवृत होने पर फिर सर्व आत्मा का सहज ही ज्ञान होने लगता है। वह सर्व गति लाखों, करोड़ों और असंख्यों में एक ही है अर्थात् एक ही ब्रह्म सभ का अपना आप है। इसी का गुह्य भेद ब्रह्मवेत्ता गुरू ही बता सकते हैं। तब कहा;—

चलते चलते जुग गए, मिला न निर्भय धाम।
पेंडे में सतगुर मिला, तो पाव कोस पर गाम॥

एक दफा ऋषिकेश की पुरानी झाड़ियों में कितने सन्त आपस में इकट्ठे हो कर योगवशिष्ट का निर्वाण प्रकरण पढ़ रहे थे, तो वहां एक विरक्त महात्मा आ निकले। उन्होंने मुस्कराते हुये कहा, कि ख़जाना तो इस ग्रंथ में भरा है. पर

खजाने की कुञ्जी कहा है ? तब सुनने वालो ने कहा, कृपया आप बताइये ?

उत्तर—वह कुञ्जी ब्रह्मवेत्ता गुरुओं से प्राप्त होती है

प्रश्न—उन्होंने कैसे प्राप्त की ?

उत्तर—अपने ब्रह्मवेत्ता गुरुओं से

प्रश्न—इसी से अन अवस्था दोष आएगा, कि वास्तव में ब्रह्मविद्या की कुञ्जी किस ने दी ?

उत्तर—प्रथम माया वशिष्ठ ईश्वर ने अपनें निज स्वरूप का ज्ञान वशिष्ट सनक, आदिक ऋषियों को कराया, जैसे गीता के चौथे अध्याय में भगवान ने अर्जुन को भी कहा, कि यह ब्रह्म-विद्याका उपदेश पहले मैंने सूर्य देव को दिया था, फिर सूर्य ने मनु के ताई उपदेश दिया और मनू ने अपने पुत्र इक्ष्वाकू को किया। इस प्रकार यह ज्ञान गुरु शिष्य की परम्परा से प्राप्त कर ब्रह्मर्षि देवर्षि और राजर्षि सभ अपने २ वातावरण अनुसार कार्य को करते हुए निःशोक जीवन बीताने लगे। अर्थात जहां २ ब्रह्म विद्या का प्रभाव पड़ा, वहां २ मनुष्य अपने को मुक्त आत्मा अनुभव करने लगे। अब भी भारत वासियों को ऐसे ब्रह्मवेत्ताओं के सम्पर्क में आने की बड़ी आवश्यकता है। तब कहा है :—

सत्गुरू मिला तो सभ मिला,
ना तो मिला न कोई !
सुत दारा और विषय सुख,
यह तो घर घर होइ !!

* ॐ आनन्द *



महा वाक्य

वेदों के महा वाक्यों का उपदेश करने वाला गुरू और श्रवण करने वाला अधिकारी शिष्य दोनों आश्चर्य रूप है। क्योंकि वेदों में जो अखण्ड एकता के महा वाक्य हैं वह भाग, त्याग लक्षणा किए बिना साधारण तौर किसी के अनुभव में आ नहीं सकते।

प्रश्न—भाग, त्याग लक्षणा किसे कहते है ?

उत्तर—ईश्वर में जो माया भाग है, और जीव में जो अविद्या का भाग है इन दोनों के कारण जीव ईश्वर में सुमेरू कुमेरूके समान भेद प्रतीत हो रहा है इन दोनों भागों को त्याग कर जो जीव, ईश्वर के लक्ष स्वरूप को ब्रह्म में लक्षणा याने एकता अनुभव करनी है उस का नाम भाग, त्याग लक्षणा है। तब कहा है।

त्यागो जीवता जीव की, ईश्वर की ईश्वरत्व।
इन दोनों का अधिष्टान जो, सो निश्चय करतत्व।
सो निश्चय करतत्व, वस्तू गति भेद न जामें।
समष्टि-वैष्टि, सर्वज्ञता-अलपज्ञता आरोपित तामें।
कहे गिरधर कविराय, मोह निंद्रा से जागो।
जीव की जीवता. ईश्वर की ईश्वरता त्यागो॥

अर्थात् जीवका जीवपना जोअविद्या में है और ईश्वर का ईश्वरपना, जो माया में है इन दोनो भागों को त्याग कर । [illegible] धिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म है उस में एकता को निश्चय [illegible] जिस में वस्तु गत भेद याने सर्वज्ञता, अल्पज्ञता, [illegible] अरोपित है । वास्तव में उस अधिष्ठान [illegible] में माया अविद्या दोनों नहीं है ।

६०—एक समय दो मित्र तीर्थ यात्रा करने को निकले । उन्होंने काशी पुरी में एक महाराजा को हाथी की सवारी पर बड़े [illegible] के [illegible] देखा [illegible] सके यज्ञ दान आदि अनेक उपकारी कर्मों को देख, कर लोग जय जयकार मचा रहे थे । कुछ काल बीतने पर जब वे दोनों मित्र कुरुक्षेत्र में जा पहुँचे तो उन्हीं में से एक ने किसी त्यागी महात्मा को देख कर कहा, कि "यह वही महाराजा है, जिसे काशीपुरी में हाथी की सवारी पर बिराजमान देखा था ।" दूसरा मित्र चकित हो कर कहने लगा, "अरे ! वह कहां और यह कहां ! उसके वहां तो खाने पीने के सदाव्रत लगे हुएथे, इसको अपने खाने के वास्ते भी नहीं । उसकी सेवा में हजारों दास दासियें खड़ी थी और यह अकेला नंगे पांव जा रहा है, उसकी कई लोग जय जयकार पुकारते थे, इसको कोइ पूछता भी नहीं । इतना फर्क होते हुए भी तू कैसे कह रहा है, कि यह वही है ?" मित्र ने उत्तर में कहा, कि "तू इन बड़ाई-छोटाई पने की बातों को थोड़ी देर के लिये भुला दे और इसके चेहरे की तरफ ध्यान से टिकटिकी लगा कर देख, कि यह भिखारी वही महाराजा है या नहीं ? इतना समझाने पर जब उसने त्यागी पुरुष के पेशानी की तरफ एकाग्रता से देख कर प्रेम से पूछा, कि "क्या आप सचमुच वही महाराजा हैं ?" तब मुस्करा कर उसने कहा, कि, वह भी मैं था और यह भी मैं हूँ !"

ठीक इसी प्रकार जगत रूपी यात्रा में एक ही पर ब्रह्म माया वशिष्ट में सर्व शक्तिमान. कृपा निधान आदि महिमा युक्त ईश्वर रूप दिखाई दे रहा है और अविद्या वशिष्ट अवस्था में वही अल्पज्ञ जीव परिच्छिन्न और शुभाशुभ कर्मों के अधीन दिखाई दे रहा है। जब जिज्ञासु को गुरू कहे हैं, कि "यह जीव आत्मा वही परमात्मा रूप है।" यह सुन कर प्रथम तो शिष्य भारी संशय में पड़ जाता है, कि शास्त्रों में ईश्वर को महान सर्वज्ञ और जीव को अल्पज्ञ बंधायमान कहा गया है। वह दोनों एक कैसे हो सकते हैं! परन्तु जब गुरू 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य द्वारा भाग त्याग-लक्षणा कर समझावे हैं, कि यह सर्वज्ञता-अल्पज्ञता वाले माया और अविद्या के दोनों भागों का त्याग कर, तुम जीव ईश्वर के असली चेतन स्वरूप में, जब लक्षणा, कर, देखोगे तो तुम्हें किंचित मात्र भी दोनों में भेद प्रतीत न होगा, अर्थात् जीव जब अपने अविद्या भाग को त्यागदेता है तब उसे ईश्वर भी माया भाग से रहित अपने से अभेद ब्रह्म स्वरूप ही अनुभव होने लगता है। तब कहा हैः—

दिया अपने खुदी को जो हमने उठा।
वह जो पर्दा था बीच में, अब न रहा॥
रहा पर्दे में, अब न वह पर्दे निशीन।
बस सिवाय उसी के, और न रहा॥

प्रश्न—'तत्वमसि' महावाक्य का यथार्थ अर्थ क्या है।

उत्तर—तत्वमसि महावाक्य में तीन पद है तत्, त्वं, असि अर्थात 'तत' ईश्वर का वाचक है, 'त्वं' जीव का और 'असि'

यह शब्द जीव और ईश्वर के अभेदता को बोधन करता है। किन शास्त्रों में जो भेद बखान किया गया है, वो उपाद्दिक है वास्तव में नहीं। जैसे एक न्यायधीश (जज) अपने आसन पर बराजमान है और उसका लड़का जो किसी कार्यवश गवाह बन कर सामने खड़ा है। वास्तव में पिता पुत्र का भेद नहीं है, यह भेद न्यायालय का है। घर में मिलने पर दोनों एक हैं जिस पर पिता का अधिकार है उस पर पुत्र के लिए भी कोई भेदभाव नहीं है। ठीक इसी प्रकार जीव ईश्वर का जगत रूपी न्यायोलय में जो भेद भाव प्रतीत हो रहा है, वह वास्तविक ब्रह्म स्वरूप में नहीं है। तब कहा है :—

यह खेल है एक अजब अनोखा ।
कि है राम मुझ में और मैं राम में हूं ॥

प्रश्न—माया और अविद्या का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—दोनों अनर्वचनीय हैं, अर्थात् न सत्य है न असत्य है, बाजीगर के खेल की न्याई अर्थात माया में ईश्वर बाजीगर के समान अनेक खेल बनाता भी है, मिटाता भी है, और अविद्या में जीव खेल में बनने वाले की न्याई भ्रमवश कुछ मिलने समय हर्ष करता है और बिगड़ने समय घबड़ा जाता है, इसलिए परतंत्र कहा जाता है और ईश्वर रूपी बाजीगर को खेल के बनने बिगड़ने में किंचित मात्र भी हर्ष शोक नहीं होता इसलिए वह परम स्वतंत्र है।

प्रश्न—एक ही ब्रह्म जीव और ईश्वर के रूप में कैसे प्रतीत हो रहा है ?

उत्तर-शुद्ध सतोगुण प्रधान माया में जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह सर्व शक्तिमान माया वशिष्ट ईश्वर कहलाता हैं। इसलिए सारे जगत का कर्ता, हर्ता और कर्म फल दाता कहा गया है और जो मलीन सतोगुण प्रधान अविद्या से ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसे परिच्छिन्न अविद्या वशिष्ट अलपज्ञ जीव कहा जाता है। वह अन्तःकरण के साथ तादात्मय अध्यास कर अनेक इच्छाओं के अधीन परतंत्र जीवन बिता रहा है। तब कहा हैं।

अविद्या के फंदे में हंस बधानां, अमर लोक किम जासी ?
अवघट छोड़ घाट में आया, बण गयो पांच पचासी।
उतों निरबंध आय बंधानां, पड़ियो काल के फासी।
गुर पूरे बिन पार न पावे; गंगा नावे जाइ काशी ॥

द्द--किसी महाराजा की सभा में एक नाचने वाली बड़े विचित्र ढङ्ग से महाराजा की महिमा को गायन कर कुछ न कुछ इनाम पा जाती थी। जब वह नाचने वाली चल बसी, तब उसकी लड़की ने राज दरबार में आने का हक संभाला और उधर भी महाराजा के पश्चात सिंहासन पर राजकुमार बराजमान हुआ।

नाचनी की लड़की नाचती तो उसी ढङ्ग का ही थी, मगर इसकी माता महाराजा की महिमा गाती थी और यह राजकुमार का ध्यान अपने तरफ आकृष्ट करने के लिए अपनी महिमा गा सुनाती थी। राजकुमार भी धीरे २ अपने प्रभाव को विस्मरण करता, उस नाचनी के इतना वशवर्ती हो गया, जो अगर वह न आती, तो अधैर्य हो स्वयं उसके घर जा

पहुँचता। इस प्रकार वह अपना स्वतंत्रपना, तेज पराक्रम भुला कर, उस नाचनी के अधीन होकर जीवन बिताने लगा। राजकुमार को ऐसी विपरीत अवस्था में देख कर सब प्रजा वासी लोग दांतों तले अंगुली देकर दंग रह गये, कि यह हो क्या गया ?

ठीक इसी प्रकार ईश्वर रूपी महाराजा के आगे यह माया रूपी नाचनी सर्वदा उसकी स्तुति करती हुई, ईश्वर से सत्ता स्फुर्ति पा कर, विस्तार को बढ़ाती रहती है और जीव रूपी राजकुमार के सामने उसी माया की अविद्या रूपी लड़की अपने ही तरफ आसक्त करने वाले आवरण विक्षेप की महिमा गाती हुई, धीरे २ जीव का अपना सच्चिदानन्द स्वरूप विस्मरण करा देती है। अन्त में जीव अपनी वास्तविक स्वतन्त्रता अजर अमरपने के असली प्रभाव को भूल कर, इसी अविद्या को ही अपना घर बना बैठता है, जिसे देखकर वेदशास्त्र विस्मित होकर बार बार कह रहे हैं, कि यह जीव अविद्या में पड़ कर कैसे अपनी आत्म हत्या कर रहा है ! तब कहा है:–

हत्या, अविद्या की लगी, नाम रूप अभिमान।
तब हत्या यह उतरे, होय यथार्थ ज्ञान॥
होय यथार्थ ज्ञान, रहे नहीं खींचातानी।
देख और की क्रिया, न उपजे रिंच गिलानी॥
कहे गिरधर कविराय, भूल कर अपनी सत्ता।
हंता; ममता, त्वंता लगी जीव को हत्या॥

प्रश्न—अविद्या और माया का भेद प्रत्यक्ष रहते हुए, जीव को वास्तविक एकता का भान कैसे हो सकता है ?

उत्तर—यह माया और अविद्या का भेद आभास मात्र है, इसी ने वास्तविकता को स्पर्श नहीं किया अर्थात ब्रह्म अखण्ड चेतन में जीव और ईश्वर का किंचित मात्र भी भेद नहीं भासता। जैसे घटआकाश और मठआकाश का परस्पर भेद घट और मठ की उपाधि कर प्रतीत होता है। उपाधि मिट जाने से दोनों ही महा आकाश रूप अनुभव होने लगते हैं। ठीक इसी प्रकार माया और अविद्या की कल्पना कर जीवचेतन और ईश्वरचेतन अलग २ प्रतीत हो रहे हैं। अगर ईश्वर को माया के सर्वज्ञता आदि गुणों से अलग समझा जाये और जीवचेतन को अविद्या के अल्पज्ञता आदिक स्वभावों से न्यारा देखा जाये, तो दोनों का ब्रह्म चेतन लक्ष्य स्वरूप में किंचित भी भेद प्रतीत न होगा। तथ कहा है :—

तू मुझ में है मैं तुझ में हूँ, आंखें मिलाकर देखले।
अगर ग़ैर देखना है तो मुझ पर है इलज़ाम क्या ?

वेदांत कहता है, इस जगत रूपी जलसे में जीव, ईश्वर का जो भेद प्रतीत हो रहा है उसे माया अविद्या का खेल समझो जो एक ही ब्रह्म का प्रतिबिंब अविद्या में जीव होकर कर्मों का कर्ता बनता है दूसरी ओर उसी ही ब्रह्म का आभास माया में ईश्वर बन कर. कर्मों के सुख, दुखरूपी फल को देता है। जब अविद्या में जीव बन कर अपने दुःख निवृती अर्थ प्रार्थना करता है. तब माया में सर्वशक्तिमान ईश्वर रूप में प्रार्थना सुन कर सहायता करता हैं। अविद्या में जीव जन्म-मरण रूप बन्धन

अपने में मानने लगता है और माया में ईश्वर बाजीगर की तरह अनेक औतारों को लीलावत् धारण करता, सदा स्वतंत्र रहता है। ईश्वर का माया रूपी शीशमहल स्वच्छ है, इसलिए वह अपन को भी जानता है और संसार के खेल को भी पहचानता है और जीव अविद्या रूपी मिट्टी के मकान में रहता है, इसलिये न अपने को पहचानता है न, जगत के वास्तविकता को जानता है। अब यह जीव ब्रह्मवेत्ता गुरू द्वारा, महावाक्य के उपदेश को श्रवण कर मूल अविद्या के आवरण का अन्त कर देता है। तब एक ही अद्वैत ब्रह्म का सर्वत्र अनुभव करने लगता है। तब कहा है :—

उठाया जब माया का पर्दा यह सारा।
तो किया ग़म खुशी ने भी, मुझसे किनारा॥
जिव्हा को न ताक़त, न मन को रसाई।
मिली मुझको अब अपनी बादशाही॥

वेदान्त कहता है, कि अगर आप अपनी सच्ची स्वतंत्रता स्थर रखना चाहते हो, तो अपने परिच्छिन्न अहंभाव को उड़ाने के लिये वेद के महावाक्य का असली आशय समझने का पूरा यत्न करो, तो अविद्या सबंधी सम्पूर्ण अध्यास हृदय से निवृत होा जायेंगे। क्या कभी आकाश वत अखण्ड चेतन के लाखों या करोड़ों टुकड़े हो सकते हैं? कभी नहीं! यह असंभव है! केवल एक ही अनंत, सर्व दृष्टा सर्व स्रिष्टा सभ का अपना आप आत्मा है। वह इस प्रकृति की ओट में छिपा है। उसी के

प्रभाव से आकाश में अवकाश है, वायू चलती है, सूर्य तपता है। सत्य तो यह है कि आप ब्रह्म हैं, मैं ब्रह्म हूँ। कौन किसी की पूजा करता है? इसमें संदेह नहीं कि सभ प्राणी ईश्वर का मंदर है। पर मनुष्य सभ से बड़ा मंदर है। जब हम इस शरीर रूपी मंदर में ईश्वर का साक्षात करते हैं, जब प्रत्येक मनुष्य के सामने भक्तिभाव से खड़े होते हैं, और ईश्वर को उसमें देखते हैं, तब हमारे सभ बंधन टूट फूट कर गिड़ जाते हैं, वे रह ही नहीं सकते और हम मुक्ति हो जाते हैं।

वेदान्त कहता है—जो इस विकारी संसार में निर्विकार को देखता है और उसे अपना स्वरूप अनुभव करता है, वही मुक्त है, वही आप्तकाम है, उसी ने ही 'तत्त्वमसि' महा वाक्य के अर्थ को समझा है और यह जान लिया है, कि विश्व का आत्मा एक ही है वह ब्रह्म हमारा ही स्वरूप है, दूसरा नहीं। तब कहा है।

ज़रा तुम जाग कर देखो, कि तुम ही पीअ प्यारा है।
अखियाँ खोल कर देखो. कि तूँ ही नूर न्यारा है॥
सोया सभ नींद में आलम, देखा उन्हें ख्वाब में ज़ालम।
नहीं उसे आप की मालूम, जागे तब नूर न्यारा है॥

६०—एक महापुरूष को किसी राजा ने यज्ञ में आने का निमंत्रण भेजा उत्तर में सत्पुरुष ने कह भेजा कि मैं स्वयं अश्वमेध यज्ञ कर रहा हूँ, इसलिये आ नहीं सकता। महाराजा यह सुन कर आश्चर्य में पड़ गया और दूसरे दिन ऐसे अश्वमेध

यज्ञ के देखने के लिये सत्पुरुष के आश्रम में आ पहुँचा। वहां तो चारों ओर सिवाय शान्ति एकान्त के और कुछ नहीं दिखाई दिया। थोड़ा समय बीतने पर जब महापुरुष समाधि से उठ कर बाहर आये, तो राजा ने प्रणाम कर पूछा, कि अश्वमेध यज्ञ की अग्नि कहां है ?

उत्तर—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' रूपी अग्नि जहां तहां मौजूद है।

प्रश्न—ऐसी अग्नि में स्वाहा करने योग्य शाकल कहां है ?

उत्तर—'मैं', 'मेरा' परिच्छिन्न पना और लोक परलोक की अनेक वासनाएँ स्वाहा करने की सामग्री है ?

प्रश्न—ऐसे यज्ञ के कराने वाला प्रधान किसे नियुक्त किया है ?

उत्तर—अद्वैत निश्चय सम्पन्न शुद्धि बुद्धि रूपी प्रधान है।

प्रश्न—अश्वमेध यज्ञ का अश्व (घोड़ा) कौन है ?

उत्तर—बड़े वेग से चलने वाला, जो मन है, वह यज्ञ का घोड़ा है।

प्रश्न—ऐसे घोड़े की रक्षा अर्थ मन्त्री किसको स्थापित किया है ?

उत्तर—विवेक रूपी मन्त्री, हाथ में 'तत्वमसि' रूपी तीर कमान लिये हुये मन रूपी घोड़े के पीछे चलता रहता है। अगर संसार के किसी भी भोग कामना में मन रुकने लगा, तो 'तत्वमसि' रूपी बाण चलाकर उसे बन्धन से मुक्त कर लेता है !

प्रश्न—ऐसे यज्ञ का फल क्या प्राप्त होवे है ?

उत्तर—जब मन रूपी अश्व ब्रह्म लोक के भोगों पर्यन्त

वासनाओं से मुक्त होकर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' रूपी अग्नि में स्वाहा होवे है. तब ब्रह्म के सविकल्प समाधि सुख का जो अपरोक्ष अनुभव प्राप्त होता है, जिसके आगे इन्द्र आदि भी पद तुच्छ है। तब कहा है।

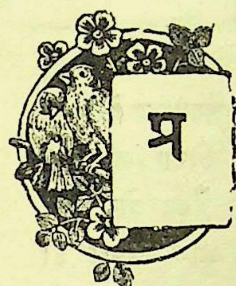
गूंगा ज्ञान कथें, सुनावे बहरे को।
पिंगु चढ़ा पर्वत पर, अंधा देख ठरे॥
समुंद्र समाना बून्द में, जल में ज्योति बरे।
समझ अजर जरे, स्वामी कहे सो सद्गुरू॥

अर्थात् जिस अद्वैत ब्रह्म को मन वाणी वर्णन नहीं कर सकती, ऐसे अलक्ष्य स्वरूप को लखावने वाले गुरु को गूंगा याने मौनी कहे हैं। और जो अधिकारी संसार के भेदभाव राग-द्वेष आदिकों से उपराम रहे उसे बहिरा कहे हैं। जिनकी इन्द्रियें विषय विकार और अशुभ कर्मों से वर्जित है, उसे यहां पिंगला कहे है। अर्थात् ऐसा ही अधिकारी ज्ञान की ऊँची भूमिका पर चढ़ सकता है ! जिसने मिथ्या नाम रूप से दृष्टि हटा ली है उसे अंधा कहे है, अर्थात् वही ब्रह्म दृष्टि से जहां तहां सर्व आत्म भाव से देख सकता है। समुंद्र समाना बून्द में याती समुंद्र रूपी ब्रह्म, जीव रूपी बून्द को महा वाक्य के उपदेश द्वारा, अपना ही स्वरूप अनुभव होने लगता है ऐसे ज्ञानवान का स्वयंज्योति पना इस जगत रूपी जल के स्पर्श से कभी नहीं बुझ सकता। इस प्रकार जो महा वाक्य का रहस्य अधिकारी को समझा बुझा कर निश्चय करावे वोही सच्चा सद्गुरू है। तब कहा है।

सत्गुर मिला नृभय भया; रही न दूजी आश।
जाइ समाना ब्रह्म में द्रढ़ किया विश्वास ॥

वेदान्त कहता है, कि महा वाक्य का असली रहस्य तब तक हृदय में नहीं खिलता, जब तक मैं स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, रोगी हूँ, निरोगी हूँ, किसी से राग है, किसी से द्वेष है, मुझ में कम शक्ति है, अधिक शक्ति है, इत्यादि भेद ज्ञान अन्दर से नहीं मिट जाते। यह निश्चय करो, कि जिस वाक्य से भेद अथवा भय उत्पन्न होता है, उसे मिटाने का प्रयत्न करो। तुम्हें भय किस का ? संसार में आप ही आप तो हैं। इसी निश्चय पर पर्वत की भांति अविचल रहो। उत्तम अधिकारियों के लिये यही परम विधि का मार्ग है। अपने से यही कहते रहो, कि 'हम अनंत सत्ता अनंत ज्ञान और अनंत आनन्द ब्रह्म स्वरूप हैं।' इसका जितना चिन्तवन करोगे, उतना बल बढ़ेगा, यहां तक कि अनंतता का अधिकार हमारे हृदय पर हो जायेगा। वह हमारे नस २ में भर जायेगा और शरीर के रोम २ में जग उठेगा तत्त्वमसि ! **अयमात्मा ब्रह्म** ! प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म ! अहं ब्रह्मास्मि ! अर्थात् **हम वो ही हैं ! हम वो ही हैं** ! ॐ।





अनुभव स्वरूप

श्न – हे भगवय महा वाक्य के उपदेश से आपने मेरे को भेड़ से शेर बना दिया है। पूर्व मैंने अनेक मत्र जाप और ध्यान उपासना विधिवत किया परन्तु अपने को साक्षा अनुभव स्वरूप निश्चय क्यों नही किया ?

उत्तर—महावाक्य के श्रवण किए बिना जिज्ञासु वासत्वक स्वरूप से अनभिज्ञ रहता है और भेद भाव में ही अपनी उन्नति समझने लगता है। एक समय किसी गर्भवती शेरनी का गोली के आवाज़ से गरभादान हो गया, और आप मर गई। शेरनी के बच्चे को भेड़ाई ने भेड़ों का दूध पिला कर पाला पोशा और वह अपनी उन्नति भेड़ों के रूप में दिनों दिन करता गया, अर्थात अपने को भेड़ों जैसा दीन दुरबल समझ कर सारा दिन बे–बे करता दौड़ता फिरता था। एक दिन उस पर किसी शेर की निगाह पड़ गई जो अपना शिकार ढूंढता उसी भेड़ों के झुंड की तरफ आ रहा था। जब उसने भेड़ों के साथ शेर के बच्चे को भागता हुआ देखा, तो उसके आश्चर्य की हद न रही, फिर तो शेर उसे जगाने अर्थ कि तूं भेड़ नही पर शेर है, इस विचार में बिचड़ने लगा। एक दिन शेरनी का बच्चा पेड़ के छाया तले सोया हुआ था तो बन के शेर न उसके गरदन पर हाथ रख कर जगाया कि देखो तुम भेड़ नही हो पर शेर हो। पालतू शेर

पहले तो बड़ा घबड़ा गया और बे-बे कर भागने लगा, परन्तु वन के शेर ने उसे समझा बुझा कर जब कुशल जलाशय के पास लाकर इसकी परिछाई और अपनी परछाई को दिखा कर यह निश्चय कराया कि तूं भेड़ नहीं हैं, मगर मेरे जैसा शेर है। अपना असली रूप देख कर पालतू शेर में यह ज्ञान उत्पन्न हो आया, जिससे बे-बे की बोली छोड़ कर ऐसी भूभय गरजना की जिसे सुनते ही भेड़ाई और भेड़ें भयभीत होकर भाग निकले। फिर तो पालतू शेर को अपने पर पूरा विश्वास हो गया, कि मैं यह मामूली भेड़ नहीं हूं मगर भूभय शेर हूं फिर तो वह सारे वन का राजा हो कर स्वतंत्र विचरने लगा।

ठीक इसी प्रकार यह चेतन आत्मा अपने स्वरूप के अज्ञान कर इस जन्म संबंधी स्थान पर, उसी शरीर, स्वभाव, जाति को अपना रूप मान कर विषय भोगों की तरफ 'मैं मैं' करता हुआ फिर रहा है। जैसे उस शेर के बच्चे को प्रथम भेड़ होकर समय बिताना अच्छा लगता था, तैसे मनुष्य को आसक्तिवश शरीर, मन, इन्द्रिय बनकर जीवन बिताना अच्छा लगता है। जब किसी पुण्य के प्रभाव से ब्रह्मवेत्ता रूपी शेर की निगाह में चढ़ जाता है, तब वे उसे अपना स्वरूप समझ कर कहने लगते हैं, कि तू शरीर रूपी भेड़ नहीं है, मन रूपी गीदड़ नहीं है तू तो शेरों का शेर सच्चिदानन्द रूप है। पहले तो सुनने वाला चकित हो जाता है, कुछ आनाकानी भी करता है। जब उसे एकाग्र वृति से शुद्ध अन्तःकरण रूपी सरोवर में साक्षी भाव का भान कराया जाता है, तब वह आश्चर्य में आकर निश्चय करने

लगता है कि मैं जीव नहीं हूँ पर असंग निर्भय आत्मा हूँ।' इस प्रकार ब्रह्मविद्या के प्रभाव से, मूल अविद्या के मिट जाने पर, इस शरीर के बन्धन आदि तो क्या, वह लोक-परलोक के सम्पूर्ण बंधनो से मुक्त हो जाता है तब कहा:—

था मैं व्यापक सदा असंगा भूल पड़ी किया मन का संगा॥
सत्गुरु ने समझाया तब भया शेर का शेरा॥
समझ लेओ मन मेरा मैं असंग साहब हूँ तेरा॥

वेदान्त कहता है॥ मुख्य प्रत्पादन सिद्ध वस्तु का, वेदान्त यह नहीं कहता कि तुम अभी जीव हो, पीछे कभी आकर ब्रह्म बनोगे, बलकि वेदान्त तो यह कहता है कि, जिस काल में अपने आपको जीव मान रहे हो उसी काल से ही तुम ब्रह्म हो और अब मानते हो कि मैं दुखी हूँ, अज्ञानी हूँ, परिछिन्न हूँ, उस समय भी तुम अस्ति भाती, प्रिय स्वरूप ही हो। अपने आपको भ्रमवश दुखी मानने से कोई अस्ति भाती प्रिय रूप में दुख का परवेश नहीं हो जाता।

प्रश्न—अस्ति भाती-प्रिय रूप किसे कहे हैं?

उत्तर—'अस्ति' यानी जो सवर्दा है, 'भाती' यानी जो सर्व काल में भासता है और 'प्रिय' यानी जिस से बढ़ कर कोई प्यारा नहीं, इस प्रकार परमात्मा इन तीन लक्षणों करके सर्व का आत्मा रूप होकर स्थित है ध्यानसे देखा जाय, तो परमात्मा के अस्ति,भाती-प्रिय रूप के बिना किसी भी वस्तु की सिद्धि

नहीं होती। जैसे किसी का कीमती हीरा खोया गया हो, उसे जब तक कोई यह न कहे कि तुम्हारा हीरा है या भासता है, तब तक उसका प्रिय पना भी लोप होने के कारण सदा बेचैन रहता है।

वेदान्त कहता है, कि अस्ति-भाती-प्रिय समुंद्रवत् पूर्ण है और उसमें नाम-रूप आदि पदार्थ तरंगों और बुद्बुदों की तरह बनते-बिगड़ते रहते हैं। जैसे कोई समुंद्र के तट पर खड़ा हो कर सिर्फ लहरों और तरंगों पर ही ध्यान रख कर कहे, कि यह लहर मेरी है, यह तरंग मेरे को सुन्दर भासता है और यह बुद्बुदा बड़ा प्यारा है। ऐसे देखते २ जब वे सब समुंद्र में मिटने लगें, तब वह निराश हो कर चिल्लाने लगे, कि मेरी तरंग नहीं है वह लहर नहीं भासती अब मैं किस को प्रिय समझूं, ऐसी शून्य दशा में कोई उसे सचेत कर दिखाए, कि जिसमें तरंग उठते थे, वह अब भी है, जिसमें लहरें भासती थी, वह भासना मौजूद है और जिसमें बुद्बुदे प्रिय लगते थे, वह प्रियता का सागर अब भी तेरे सम्मुख दीखता है, फिर तू निराश किस कारण होता है।

ठीक इसी प्रकार अस्ति-भाती-प्रिय समुंद्रवत् परमात्मा में हम, तुम साकार नाम-रूप तरंगों और बुल्बुलोंवत् होते और मिटते रहते हैं। अगर हम किसी व्यक्तिगत वस्तु से संयोग वियोग होने के साथ अस्ति-भाती-प्रिय का भी संयोग-वियोग मानने लगें, तो यह ऐसा होगा, जैसे कोई तरंग के मिटने के

साथ. भ्रमवश समुंद्र का भी मिटना समझे। चाहे लहर समुंद्र में कही जाती है पर ढूंढने से उसी का अस्तित्त्व समुंद्र ही तो मिलता है, लहर का भासना समुंद्र के भासने के अधीन है। यह नाम-रूप की उपाधि माया मात्र प्रतीत हो रही है, जिसके कारण सब एक दूसरे से अलग २ दीख पड़ते हैं, पर इनका अलग २ अस्ति-भातीपना तो है नहीं। तब कहा है:—

लहरें फोटे बुद्बुदे, सब दरिया का दीदार।
कपड़े कुल कपह के; इक रूई है रंगदार॥
दोअनी, आधी, पाउली, सब कलई है कलदार।
वण तृण बूटे बाग बन, इक बीज मांहि विस्तार॥
मण्डल सब मिट्टी के, यह जायों के जिन्सार।
है, यह सभी इस्रार, अस्ति-भाती-प्रिय का॥

जब अस्ति-भाती-प्रियपने का वास्तविक ज्ञान हो जाता है, तब जिज्ञासु जानने लगता है, कि मैं-तू, देश काल. चांद तारे आदि सब इसी अस्ति-भाती-प्रिय रूप समुंद्र के भिन्न २ लहरों और तरंगों के समान है चाहे बाहरी अवस्था में परिवर्तन होते रहते हैं—जो कोई पूर्व काल में देवता था आज संभव है कि वो मानुष हो, कल वो ही पशु अवस्था में जाय और कभी वनस्पति में भी हो इसी प्रकार जीव तरंगों की तरह सदा एक से दूसरी अवस्था में परिवर्तन करता रहता है, तो भी अपने अस्ति-

भाती-प्रिय रूप से उसकी सता भिन्न नहीं है। जैसे समुंद्र की लहर में कोई ऐसा अंश नहीं, जिसे हम समुंद्र न कहें, समुंद्र शब्द के कहने से लहर और समुंद्र के सभी भाग आ जाते हैं। इस प्रकार अस्ति-भाती-प्रिय, ब्रह्म सागर में, हम नाम-रूप-क्रिया कर अलग भी हैं और एक भी हैं। जब हम अपनी वास्तविकता को ग्रहण करने लगते हैं, तो अपने को अलग नहीं ग्रहण कर सकते, उस अनंत में ही पाते हैं। तब कहा है :—

आब में ढूंढे से हरगिज़ बुलबुला मिलता नहीं।
अगरचि मिलता है, तो उस से जुदा मिलता नहीं॥

वेदान्त कहता है, कि सत्य के साक्षात्कार वाला हर एक पदार्थ को अस्ति-भाती-प्रिय रूप से ग्रहण करता है अथवा अपने को अस्ति-भाती-प्रिय रूप निश्चय कर सब पदार्थों को अपने में कल्पित अनुभव करने लगता है। ऐसा ज्ञानवान् परमात्मा के होने में अपना होना, उसके भासने में अपना भासना और उसके प्रियपने में पूर्ण आनन्द का अनुभव कर सदा तुरीया अवस्था में स्थित रहता है।

प्रश्न--तुरीया अवस्था किसे कहते हैं ?

उत्तर--जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं के बदलने पर भी जो अनुभव अवस्था नहीं बदलती और किसी के गुण-स्वभाव कर लिपायमान नहीं होती, उसे तुरीया अवस्था कहते हैं।

जैसे जाग्रत अवस्था में शरीर इन्द्रियें और विषय पदार्थ, जो प्रतीत हो रहे हैं, उनके अनुभव करने वाला वास्तव में एक ही आत्मा है, और बाहर से जो अनुभव विषे भेद प्रतीत होता है. कि यह आँख का अनुभव है, यह जिह्वा का अनुभव है, यह कान का अनुभव है. परन्तु यह भेद अनुभव का नहीं है, किन्तु उन इन्द्रियों का है, जो विषयों के अलग २ गुणों को ग्रहण करने का स्वभाव रखतीं है, और स्वप्न अवस्था विषे तो यह शरीर इन्द्रियें आदि भी नहीं होती, पर उस अवस्था को जानने वाला अपना अनुभव स्वरूप आत्मा वहां भी मौजूद रहता है। स्वप्न विषे हम सूर्य का प्रकाश, चंद्रमां की चांदनी आदि देखते हैं, वह किस के सहारे ? उस अनुभव अलिप्त चेतन प्रकाश के सहारे।

प्रश्न—सुषुप्त अर्थात् गहरी नींद में तो अपना अनुभव रूप आत्मा भान नहीं होता. जो सब लोग उठ कर कहने लगते हैं, कि हम ऐसे आराम में सोए, जो कुछ भी खबर न थी।

उत्तर—उस गहरी नींद में भी, जिस कर यह बेखबरी जानी जाती है, वह जानने वाला अनुभव रूप वहां भी मौजूद है। जैसे कोई उजाड़ बयाबान से होता हुआ आकर कहे कि वहां कोई भी चेतन प्राणी न था, तो उसे कहा गया कि तुम्हारे भीतर तो चेतन तत्व मौजूद था, उसने ही तो अपने से भिन्न चेतन के अभाव को जानया। वैसे सुषुप्त अवस्था में, मन-बुद्धि, इन्द्रिय आदि, तो सब लय हो जाते हैं, केवल हमारा अनुभव ज्ञान स्वरूप ही उस अवस्था में मौजूद रहता

है, जो जाग्रत में उठने वाली मन-बुद्धि इन्द्रियों आदि को यह भान कराता हैं, कि गहरी नींद में तुम्हारे में से एक भी नहीं था और मैं सब कल्पनाओं से रहित अपने आनन्दमय अनुभव रूप में स्थित था। जैसे सूर्य अपने प्रकाश ने विषे दीपक बिजली आदिकों की इच्छा नहीं करता, वैसे अनुभव ज्ञान स्वरूप अपने जानने अर्थ, मन. बुद्धि इन्द्रिय आदिकों की अपेक्षा नहीं रखता। जिस अनुभव ज्ञान स्वरूप कर, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदिकों की जानकारियां जाग्रत तथा स्वप्न अवस्था में सिद्ध होवे हैं, उसी सर्व आत्मा रूप तुरीया अवस्था में, ज्ञानवान सदा स्थित रहता है। ऐसी अवस्था में कौन कह सकता है कि ईश्वर अज्ञात है? कौन कहता है कि उसे ढूंढ़ना है? उसने तो अपने में उसे तुरिया अवस्था में पा लिया है। हम उसमें सदा से रहते आ रहे हैं। चारों ओर वह सदा ज्ञात है। सर्वत्र उसकी पूजा हो रही है। पूजा की नाना विधियां है, परन्तु अपने अनुभव रूप में ईश्वर का साक्षात्कार करना ही असली साक्षात्कार है। तब कहा है।

स्वामी सो सुलतान, जो बैठे अनुभव तख्त पर।
मारे मन मवास को, जीते सब जहान ॥
होका फेरे हक का, न्याय करे निर्बाण।
सदाई विदिमान, देखे सार स्वरूप को ॥

अर्थात सच्चा सुलतान राजाओं का राजा वही है, जो सदा अनुभव रूपी तख्त पर विराजमान रहता है। जिसने मन

की सम्पूर्ण कल्पनाओं को मिटा कर, सारे संसार पर विजय पाई है वह मुक्त आत्मा पुरुष ही लोगों को सच्चे सामराज्य का संदेश सुना कर स्वतंत्र सुख, जो हमारे जीवन का उद्देश्य है, उसका नियाय दिलाता है, क्योंकि उसने सदा विद्यमान, जो अपना अनुभव स्वरूप है, उसका साक्षात्कार कर लिया है।

प्रश्न—कई लोग अपने अनुभव रूप के विषय में ऐसा कहते हैं कि हमारा अनुभव हमारी बुद्धि जितना ही है ?

उत्तर—वे लोग ऐसी भूल करते हैं, जैसे छोटा बालक अध्यापक के 'क' 'ख' अक्षरों के पढ़ने समय यह भ्रम करने लगे कि मेरा अध्यापक भी इतने ही अक्षर जानता होगा। वैसे अपार अनुभव ज्ञान स्वरूप से, अपनी बुद्धि अनुसार खाने कमाने का ज्ञान प्राप्त कर वे लोग ऐसा गुमान करने लगते हैं, कि शायद हमारे अनुभव स्वरूप में भी इस बुद्धि जितना ही ज्ञान होगा। वास्तव में ऐसी असंख्य बुद्धियें, उस व्यापक अनुभव स्वरूप से, ज्ञान को ग्रहण कर संसार में बड़े बुद्धिमानीपने का परिचय दे रही हैं।

प्रश्न—जब मानुष मात्र का अनुभव स्वरूप एक है, तब एक मनुष्य के विचार और जानकारियों को दूसरा मनुष्य क्यों नहीं जान सकता है ?

उत्तर—किसी के ख्याल या विचारों को जानना यह अन्तःकरण का स्वभाव है। वे अन्तःकरण सब के अलग २

और परिच्छिन्न हैं। इसलिए एक अन्तःकरण, दूसरे अन्तःकरण के विचारों और जानकारियों को नहीं जान सकता।

वेदान्त कहता है, कि अनुभव स्वरूप आत्मा को सूर्यवत समझो और अन्तःकरण सचित्र पर्दों के समान। जैसे सूर्य का प्रकाश सभी पर्दों पर समान रूप से पड़ता हुआ भी, न किसी के चित्र को ग्रहण करना है, न एक पर्दे का चित्र दूसरे पर्दे में जनाता है वैसे अनुभव ज्ञान, स्वरूप सभी अन्तःकरणों को प्रकाशता हुआ न किसी के संस्कारों को ग्रहण करता है, न एक अन्तःकरण के कल्पनाओं को, दूसरे अन्तःकरण की कल्पनाओं से मिलाता है अर्थात् सब के विचार और निश्चय, अपने २ हद के अन्दर दिखा देता है।

प्रश्न—अगर हमारा अनुभव ज्ञान स्वरूप ऐसा नित्य और व्यापक है तो मृत्यु के अवस्था में उसका अभाव क्यूं हो जाता है?

उत्तर—अन्तःकरण की मृत्यू अथवा मूर्छा अवस्था में असली अनुभव स्वरूप अपने द्रिष्टा स्वरूप में ज्यों का त्यों स्थित रहता है, तब साधारण लोग इसे मृत्यू अवस्था कहते हैं। जैसे दरपण में जो सूर्य का प्रतबिंब दिखाई देता है, वह दरपण के टूट जाने से कोई मिट नहीं जाता, बल्क अपने बिंब स्वरूप सूर्य में जा स्थित होता है। वैसे अन्तःकरण रूपी दरपण में प्रतीत होने वाला चिदाभास अन्तःकरण की मूर्छत मृत्यू आदि अवस्थाओं में अपने निज अनुभव स्वरूप में जा स्थित होता है। जैसे मानुष सुषुप्त से उठ कर जाग्रत में आता है, तैसे दूसरे जन्म में फिर अन्तःकरण के जग जाने से चिदाभास अपने को भ्रम वश जन्मया हुआ मानता है।

प्रश्न—चिदाभास और साक्षी अनुभव स्वरूप में भेद क्या है ?

उत्तर—'मैं कर्ता हूँ' 'मैं भोगता हूँ' और सुख-दुःख आदि व्यवहार जिस में प्रतीत होवे' उसे चिदाभास कहे हैं. और जो इन सम्पूर्ण गुण स्वभावों से न्यारा, केवल द्रिष्टाज्ञान स्वरूप है, उसे अनुभव आत्मा कहे हैं।

प्रश्न—ममोक्षु का मोक्ष किस अवस्था में होवे है ?

उत्तर—जब चिदाभास अवस्था में कल्पित अन्तःकरण के भोगतापने को मिथ्या निश्चय कर, अपने अभोगता स्वयं प्रकाश अनुभव स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

प्रश्न—स्वयं प्रकाश अनुभव स्वरूप अपना आप होते हुये भी, अपरोक्ष क्यों नहीं भासता ?

उत्तर—दशम् पुरुष की नियाई। जैसे दश मानुष किसी काय वश, एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें बड़े वेग वाली बरसाती नदी पार करनी पड़ी। नदी पार करने पर उन्हों के चित्त में यह संशय हुआ, कि हम अपने आप को गिण लें। कहीं कोई नदी में वह तो नहीं गया तब गिणने वाले पुरुष ने एक २ करके सब को गिण लिया तो कुल नौ हुए अर्थात् नौ को गिणने वाला भ्रमवश अपने को न गिण कर कहने लगा, कि "दशवां कहीं नदी में डूब गया है।" यह सुन कर नौ, जो उससे भी ज्यादा मूर्ख थे, वे शोकात्र हो कर विलाप करने लगे और दशवां आप ही अपने वास्ते रोता भया ! इतने में कोई दयालु पुरुष जिस ओर नदी बहती जा रही थी, तिस ओर से आन प्राप्त भया। उनसे वे पूछने

लगे कि हमारा दशवां मित्र आपने कहीं नदी में बहता हुआ तो नही देखा ? तब दयालु पुरुष ने उन्हें दृष्टि भर देखा, तो उसे दश ही पुरुष बैठे हुए नजर आये। तब उन्हें कहने लगा, कि "तुम मत रोवो, दशवां डूबा नहीं है।" यह सुन कर उन्होंने यह अनुमान लगाया, कि शायद इसने हमारे दशवें को नदी के किसी घाट पर निकला हुआ पाया हैं। स्वयं दशवां पुरुष उस दयावान को कहने लगा, कि "वह कहां देखा है, कृपया हमारे को वहां ले चलो।" तब दयावान ने कहा, कि "दशवां कहीं दूर नहीं है, वह यहां ही मौजूद है।" फिर तो गिणने वाले का हृदय प्रेम से भर आया और दयावान को कहने लगा--"बताओ! बताओ! यहां दशवां किस जगह बैठा है ?" दयावान ने सहर्ष उत्तर दिया, कि "वह दशवां तूँ है।" तब वह चकित हो कर बोला कि "मैं दशवां कैसे हूँ ?" दयावान--"तुम मेरे सामने सब को गिनो।" तब दशवें ने एक २ कर अपने साथियों को गिना और बोला--"देखो, यह नौ ही तो हैं ! तब दयावान झट उस गिणने वाले के सिर पर हाथ रख कर बोला, "यह दशवां तूँ नहीं है ? अगर तूँ न होता, तो नौ को कौन गिनता ?" तब उसका भ्रम दूर हुआ और निश्चय से कहने लगा. कि "बराबर जिस दशवें के लिये मैं हैरान था. वह दशवां मैं ही हूँ।" फिर तो दशवें के लिये रोना विलाप करना आदि क्लेश उसी क्षण सभ के निवृत हो गये।

ठीक इसी प्रकार अपना अनुभव स्वरूप आत्मा उस दशवें पुरुष की नियाई नित्य प्राप्त है, जिस कर मन, बुद्धि इन्द्रियें आदि

सबको जाना जाता है, फिर भी जो मनुष्य विकल्प करने लगता है, कि 'अनुभव ज्ञान स्वरूप आत्मा हमको प्रत्यक्ष नहीं भासता, पता नहीं वह कहां छिपा हुआ है ?' इसी भ्रमवश नौ जो मन; बुद्धि चित्त, अहंकार और काम क्रोध आदि हैं, उनके गुण स्वभावों को अपने में आरोप कर दिन-रात व्याकुल हो विलाप करता रहता है, कि मेरा साक्षी न्यारा स्वरूप कहां है, कहीं दिखाई भी नहीं देता ! दिन प्रतिदिन कष्ट बढ़ते जा रहे हैं ! जब कोई दयावान ब्रह्मवेत्ता उसे दुःखी देख कर कहता है, कि 'वह साक्षी सर्जनहार कहीं दूर नहीं है, अब भी तेरे में मौजूद है।' तब वह दुःखी जिज्ञासु पूछता है, कि "मेरे अन्दर किस जगह बैठा है ? अर्थात् हृदय में, नाभि में, भ्रकुटी में या दशवें द्वार में ?" तब दयालु ब्रह्मवेत्ता यथार्थ वचनों में कह देता है, कि वह अनुभव साक्षी स्वरूप तूँ ही है।" प्रथम तो जिज्ञासु चकित हो कर बोल उठता है, कि "मैं वह साक्षी अनुभव रूप कैसे हूँ ?" तब ब्रह्म वेत्ता कहे हैं—"अच्छा तो तुम्हारे अन्दर जो २ हैं, वह गिण कर बताओ।" शिष्य—मेरे में पांच ज्ञान इन्द्रियें, चतुष्ट अन्तः-करण, तीन गुण, दो प्राण-अपान और एक शरीर है। तब ब्रह्मवेत्त, गुरू, कहे हैं—इन सब को जानने वाला तूँ कौन है ? शिष्य—मैं इन सब का अनुभव करता हूँ, पर अपने को नहीं जानता। गुरू—तो बस, यहां अपने को जान, कि तूं ही दृष्टा अनुभव रूप है, तेरे दृश्य जो मन-बुद्धि आदिक है, वह तुझे क्या जानें ? तूँ भी अपने को, मन-बुद्धि आदिकों से जानने का भ्रम अब त्याग दे। यह सुन कर शिष्य कृत कृत्य हो गया। तब कहो है:—

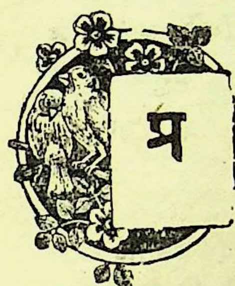
दृष्टा दृश्य न होत है, दृश्य न दृष्टा मीत।
यह पक्का निश्चा जानकर; शोक न करणा चीत॥

वेदान्त कहता है कि सब का दृष्टा और सब का अधिष्टान आत्मा, सब के अन्तःकरण में सदा विद्यमान है और वही एकमात्र सत्य है। इसलिये जो यहां है, वह वहां भी है। जो वहां है, वह यहां भी है। वेद की श्रुति कहती है—'नेह नानास्ति किंचन' अर्थात् सत्य में किंचितमात्र भी नानात्त्व नहीं है। जैसे सूर्य की ओर दृष्टि करने पर, सिवाय प्रकाश के और कुछ नहीं दिखाई देता, वैसे अनंत ज्ञान अनुभव स्वरूप सूर्य के सन्मुख होने पर, सिवाय अनुभव रूपता के किंचित मात्र भी द्वैत प्रतीत नहीं होता। वास्तव में मन-बुद्धि आदि भी अपना अस्तित्त्व नहीं रखते जब अनुभव ज्ञान स्वरूप मन-बुद्धि आदि से होकर निकलता है, तब उन्हीं में संकल्प और जानकारियाँ फुरने लगती हैं। वह स्वयं अनुभव ज्ञान अखण्ड होने के कारण कभी घटता या बढ़ता नहीं। जिसमें यह कहना भी नहीं बनता. कि उसे किसी वस्तु का ज्ञान हो, क्योंकि दृश्य पदार्थों के ज्ञान कर, मन-बुद्धि आदिक ही ज्ञाता बनते हैं। और वह ज्ञाता अज्ञाता पने से निराला है। तब कहा है।

जहां मांहि समाधि उत्थान नहीं, जहां ज्ञान अज्ञान समान सही
जहां हम और तुम पुनः ना मम है, सुख रूप अखंड अनु भव हम
ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!



ज्ञानी का कर्तव्य



श्न—अपने को नित्य मुक्त अनुभव स्वरूप निश्चय करने वाले ज्ञानवान को, जीवन में बाकी क्या कर्तव्य करना रह जाता है ?

उत्तर—ऐसे ज्ञानवान के लिए किंचत मात्र भी कर्तव्य नहीं रह जाता। वे चक्रवृती महाराजा के समान, इस शरीर रूपी राज में मन इन्द्रयों रूपी मंत्रयों सहित, परम स्वतंत्र विचरता है। उसकी न पुण्यों कर वृाध होती है, न पापों कर लघुता कूं पाता है। जैसे वड़ और पीपल के वृक्षों की जड़ें जब पृथ्वी के अन्दर पाताली पानी में पहुँच जाती हैं तब, फिर बाहर से जल मिलने या न मिलने कर उनकी कोई हानी या वृधि नहीं होती। तैसे ब्रह्मवेता ज्ञानवान अक्षर आत्मा से अभेद होने के कारण, उन्हें कोई भी बाहर का कर्म, हानि या लाभ पहुंचा नहीं सकता। तब कहा है।

बंधन करे है कर्म, यह भी जीव का अज्ञान है।
निह संग को फिर संग, जिस में युक्ति ना प्रमाण है॥
सुख रूप, वह कूटस्थ, जिसमें काल है न देश है।
उस रूप को पहचान तूं श्री कृष्ण का उपदेश है॥

प्रश्न—जब ज्ञानवान की देह आदकों विषे अहं बुद्धि और जगत विषे सत्य बुद्धि नहीं रहती तो 'मैं मनुष्य हूं' 'मैं ग्रहस्थ हूँ' वा 'विरक्त हूँ' इत्यादि आत्मा से विपर्यय समस्याओं का हल कैसे हो सकता है ?

उत्तर—ज्ञानवान की जो मन इन्द्रयां आदिक अनादि काल से अपने २ प्रवृति अनुसार वर्ताव करती आयो हैं, वो ही प्रारब्ध भोग प्रयंत जीवन के सभी व्यवहार सावाधानता पूर्वक करती रहती हैं।

प्रश्न—उन मन इन्द्रयों के व्यवहार निवृती अर्थ भी ज्ञानवान को ध्यान योग आदि कर्तव्य तो करना पड़ेगा ?

उत्तर—जिस व्यवहार ने प्रारब्ध कर्म पर्यन्त रहना है, उस व्यवहार को एक ध्यान तो क्या, हजारों ध्यान भी निवृत्त नहीं कर सकते !

प्रश्न—क्या ज्ञानवान को व्यवहार के विरलता करने की आवश्यकता नहीं हैं ?

उत्तर—व्यवहार बाधक तो, साधक को प्रतीत होता हैं, ज्ञानवान तो व्यवहार में आकाशवत असंग रहता है। जैसे महा आकाश में अनेक प्रकार के व्यवहार होते हुए भी, उसे स्पर्श नहीं करते, वैसे ज्ञानवान के साक्षी अनुभव स्वरूप को, शरीर, मन, इन्द्रिय आदिकों के व्यवहार, स्पर्श नहीं कर सकते।

प्रश्न—ज्ञानवान को अखण्ड अनुभव अवस्था के लाभ अर्थ, निर्विकल्प समाधि तो अवश्य करनी चाहिए ?

उत्तर—अखण्ड अनुभव रूप तो ज्ञानवान का अपना आप हैं। वह समाधि बिना ही उसे आठों याम भासता है, फिर उसके लिए तत्ववेत्ता को कोई कर्तव्य नहीं रह जाता. वह योग समाधि से परे महा समाधि में सदा स्थित है। जिन लोगों को यह गोप्य रहस्य शीघ्र समझ में नहीं आता, तो भी संदेह की बात नहीं क्योंकि यह अद्वैत सिद्धांत है। और सब साधन संपत्ति सत्य के प्राप्ति अर्थ केवल सीढ़ियां हैं पर सत्य का साक्षात्कार अलग बात है। इसलिए वेदान्त, अधिकारियों को पग २ पर यही कहता है कि भाई जिसका तुम आराधन करते हो, वह अज्ञात रूप में तुम हो तो हो, जिसे तुम संसार में इधर उधर ढूंढ़ते फिरते हो वह सदा तुम्हारे साथ है। तब कहो है।

ढूंढ़ो फिरो तू काहे, तुझ बिन दूजा को नाहे ।
मर वेख मन के माहे, तज आसरा दीगर का ॥

प्रश्न—अगर किसी प्रकार का भी कर्तव्य ज्ञानवान के ऊपर न रहेगा, तो उनकी शास्त्र निषिध प्रवृत्ति हो जायगी ?

उत्तर—ज्ञानवान के विषय में अति प्रश्न नहीं करना चाहिए. क्योंकि वे कर्ता भोगता पने के अभिमान से रहित केवल प्रारब्ध अनुसार व्यवहार करते द्रिष्ट गोचर होते हैं ? परन्तु उनका लक्ष तो सदा जीवन मुक्ति लाभ पर रहता है। ज्ञान

प्राप्त करना बड़े साहस और वीरता का काम है। संसार के सारे खिलौने चूर २ कर फेंक दें। केवल मन से ही नहीं कर्म से भी कर देखें। एक प्रेमी आकर कहने लगा कि मैं शरीर तो नहीं हूँ. पर मेरे सिर का दर्द दूर हो जावे ! अगर शरीर तू नहीं है तो हजारों शिर वेदनाएं, सहंस्रों शरीर आवें और जावें इससे तुझे क्या। जैसे दरपण के सामने चाहे आप सारा दिन देखते रहें, तो उस पर आपका थोड़ा भी निशान रह नहीं सकता वैसे ज्ञानवान के समीप कितने भीं विषय भोग पदार्थ क्यों न हों. तो भी उनका उस पर कोई प्रभाव पड़ नहीं सकता। तब कहा है:-

ज्ञानी को जग नंदन बन है, विचरत आनन्द धार।
कल्पतरू हैं तर तंहि सभ ही, गंगा जल सभ वार॥
सर्व क्रिया तांहि पुण्य रूप है, जो जो करे विहार।
वाणी तांकी वेद श्रोमणी, अद्वेत अमृत सार॥
सर्व काल 'परमानन्द' भासत, पंच कोश से पार॥

वेदान्त कहता है, कि वही पुरुष सब प्राणियों में श्रेष्ट है, जिसने ब्रह्म से अपनी अभेदता अनुभव की है। "जो थोड़े मात्र भी भेद को देखता है. उसे वेद की श्रुति भय की प्राप्ति कहती है:—'द्वितीयं भयं भवति' ऐसे अद्वेत ब्रह्म का साक्षयात्कार करने वालों और सिर्फ मुख से वेदांत कहने वालों में सुमेरु, कुमेरू का अन्तर है। साधारण तोर वेदांत दर्शन का विचार करना

अच्छा है, पर साक्षात्कार होने पर वह नक्शा ही बदल जाता है। उन्हें तर्क या युक्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहती मूर्तिमान सत्य जिनोंने अपना आप जानलिया है, उनसे चाहे वर्षों तक तर्क करते रहें, पर वे आप पर हसेंगे। वे उसे बच्चों की सी बातें समझेंगे, क्योंकि उन्हें सत्य का साक्षात्कार हो चुका है, वे सदा उसमें तृप्त हैं। तब कहा है:—

बाहर कर्ता-भोगता, अन्दर एक न दो।
प्राप्त की हुई प्राप्ति, जीवन मुक्त है सो॥

प्रश्न—किन लोगों का कहना है, कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर हमारे गृहस्थ का कार्य क्रम ठप हो जायेगा, जो कार्य उन्हें बड़ा प्रिय लगता है ?

उत्तर—यह कहना अयुक्ति है, काहेते योगवशिष्ट में कहा है, कि शम्बर धुज आद अनेक राज व्यवहारों में रहते हुए भी जिनकी अविद्या ब्रह्म विद्या कर नाश हो गई है वह चाहे बाहर से कितने ही संकटों में फंसा हुआ दिखाई क्यों न दे, तो भी आकाश की न्याई निर्लेप रहता है। ऐसा ज्ञानवान व्यवहार दशा में खेती-बारी से लेकर युद्धि के संग्राम पर्यन्त और त्याग में तपस्या आदि से लेकर निर्विकल्प समाधि पर्यन्त, सम्पूर्ण कार्य चित के वृति का कर्त्तव्य जान कर, उन्हें सहज भाव से करता दिखाई देता है। तब कहां है:—

भोगी थे यदुराइ जी; भूप जनक रघुनाथ।
त्यागी थे शुक, वाम, दत, मुक्ति में सभ साथ॥

वेदान्त कहता है, कि सम्पूर्ण ज्ञानवानों का सिद्धान्त एक है और वर्ताव, देश, काल, के अनुसार भिन्न २ प्रकार के होते हैं, जैसे एक जाति के मीठे आमों वाले पेड़। रस तो उन्हों का एक ही जैसा होता है, परन्तु आकार में किस वृक्ष की डाली किस तरफ की ओर होती है, तो किस की शाखें किसी ओर फैलती हैं अर्थात् जैसा जिस पेड़ को अवकाश मिला, उसी तरफ वह बढ़ने लगता है।

इस प्रकार सभ युगों में ज्ञानवानों का एक अद्वैत सिद्धांत ही होता है, परन्तु बाहर से वर्ताव प्रदृष्ट अनुसार कोई राज काज में, कोई बन की गुफाओं में, तो कोई परोपकार आदि में विचरता दिखाई देता है।

प्रश्न—ज्ञानवानों के वर्ताव में साधारण लोगों से क्या विशेषता रहती है ?

उत्तर—ज्ञानवान संसार में एक नट के समान पार्ट करता है, जैसे नट स्टेज पर आता है और भिखमंगे का स्वांग धारता है। उसे भीख मांगने वाले से तुलना कर देखें, जो गली २ भीख मांगता फिरता है। दोनों के रूप एक हैं, बोली भी संभव है एक हो, पर दोनों में भेद कितना बड़ा है ! एक को उस भिखमंगे के स्वांग में आनन्द आता है और दूसरा उसी रूप में दुःख भोगता

है। इस अन्तर का कारण क्या है ? यही, कि एक मुक्त है, और दूसरा बध। नट जानता है, कि उसका यह रूप सच्चा नहीं है, उसने उसे स्वांग के लिए धारा है और भिखारी यह समझता है, कि उसका वास्तविक रूप वही है और वह चाहे वा न चाहे, उसे वह रूप रखना ही पड़ेगा।

ठीक इसी प्रकार जब तक हमें अपने स्वरूप का बोध नहीं है, हम आशाओं के भिखारी बने हैं। प्रकृति की ठोकरों पर ठोकरें खाते हैं और बात २ में उसके दास बने रहते हैं। हम संसार में त्राह त्राह कर चिल्लाते हैं, पर कहीं से हमें कुछ भी सहारा नहीं मिलता। इस प्रकार आशा करते २ एक जन्म बीतता है, दूसरा भी बीत जाता है, पर वह बात ज्यों की त्यों बनी रहती है।

वेदांत कहता है, कि मुक्त बनो। किसी से कुछ आशा न रखो। अपनी वास्तविकता को पहचानों। यदि कोई राजा पागल हो जाय और अपने राज भर में राजा को ढूँढता फिरे, तो उसे कभी राजा न मिलेगा। कारण यह है, कि राजा तो वह स्वयं है। यह अच्छा होगा, कि वह अपने को जान जाय, कि मैं वही हूँ और उसे व्यर्थ ढूंढने की बात छोड़ दे। इसी प्रकार ज्ञानवान को, पूर्ण सुख और सच्चे समराज्य की प्राप्ति आत्मा के पहचान से होती है। वह सारे श्विव में खेलारी बन कर अपना खेल करता रहता है। तब कहा हैः—

ज्ञान निष्ट की जानत ज्ञानी
और सकल जन भ्रम भुलानी, जपी तपी और ध्यानी।
विवेक वैराग्य आगे है ठांडे, मुक्त न जानी निशानी॥
कहकह थके भेदवादी सब काहू की नहीं मानी।
सोय रहा सुखमय सेजा पर, अभय वस्त्र को तानी॥

पूर्व भारतवर्ष में ऐसे अनेक राजा महाराजा आत्मवेत्ता हुए हैं, जो अपने ज्ञान के प्रभाव से हर्ष शोक से रहित राज काज चलाते रहते थे। जैसे मिथिला नगरी का राजा जनक, महाराजा दलीप, राजा अज, काशी के अजातशत्रु राजा प्रत्रदिन इत्यादि बड़े पराक्रमी, महान् पुरुषार्थ करते हुए आत्मा ज्ञान के प्रभाव कर हानि-लाभ से रहित जीवन मुक्त कहे जाते थे। तात्पर्य यह, कि आध्यात्मक ज्ञान, केवल बनों या गुफाओं में रहने वालों के लिये ही नहीं, अपितु उसके बहुत ही उत्कृष्ट उदाहरण उन लोगों के मिलते हैं, जिनका जीवन नित्य कर्मों के झमेले में व्यस्त रहता था, तो भी निःसंग और निःशोक अपने को अनुभव करते थे। भगवद्गीता, जो अध्यात्म ज्ञान का उत्तम भाष्य है, जिसमें सबसे अद्भुत बात तो यह है, कि उसे तब कहा गया, जब कुरुक्षेत्र में दोनों ओर से लोग युद्ध के लिये उद्यत थे। ऐसी दशा में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र, अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश किया। गीता के प्रत्येक पृष्ठ जिस सिद्धांत का उपदेश है, वह नितान्त कर्मों में निरत कर उत्साह बढ़ाने

वाला है। यदि अकर्मण्यता [किसी प्रकार की चेष्टा न करना] ज्ञान का उद्देश्य होता, तो द्वार सब से अधिक ज्ञानी कही जाती ! इसी से ज्ञात हुआ कि पूर्व भारतवर्ष में ज्ञानवान सभी वर्णाश्रमों में, अपने २ कर्त्तव्य को स्वतंत्र भाव से पालन करते हुए पाए जाते थे। तब कहा है:—

न ग़म दुनियां का है उनको, न दुनियां से किनारा है।
न शाही में वो शादां हैं. गदाई में न ग़म उनको।
जो बन आवे, वही अच्छा, यही जिनका गुज़ारा है॥

८०—एक समय चार मित्र अद्भुत् चिन्तामणि की खोज में निकले। भाग्यवश एक को तो वह चिन्तामणि, घर से बाहर निकलते ही मिल गई। दूसरे को किसी नदी के किनारे पहुंचने पर। तीसरा मित्र जब गहन बन में जा पहुँचा, तब वहां उसे चिन्तामणि हासिल हुई और चौथे मित्र को हिमालय की कन्द्राओं में प्रवेश करने पर चिन्तामणि प्राप्त हुई। फिर तो जो जहां, वह तहां, चिन्तामणि के लाभ से निश्चिन्त हो कर निवास करने लगा, चारों में से किसी को भी एक दूसरे से कम लाभ न था।

ठीक इसी प्रकार मानुष मात्र को कृतार्थ होने के लिए ब्रह्म विद्या रूपी चिन्तामणि की बड़ी आवश्यकता है, जिसके लिये ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और संन्यासी, इन चारों आश्रमों के जिज्ञासुओं की खोज जारी रहती है अर्थात् वेदांत के

अनुसार श्रवण, मनन, निदिध्यासन होने लगता है, तब किसी को पूर्व पुण्यों के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम में ही ब्रह्मविद्या रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति हो जाती है, तो किन भाग्यशील व्यक्तियों को गृहस्थ आश्रम में ही यथार्थ बोध हो जाता है, किन तितिक्षों को वानप्रस्थ आश्रम में ज्ञान लाभ होता है और किन महानुभावों को संन्यास, उदास आदि उत्तम आश्रमों के धारण करने पर अपरोक्ष आत्म साक्षात्कार का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार किसी भी आश्रम में वास्तविक स्वरूप का बोध होते ही निश्चिन्तता पूर्वक जीवन मुक्ति का अनुभव होने लगता है। फिर उन्हें मुक्ति अर्थ कोई याचना नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उनको सर्वव्यापी, जन्म-मरण से परे, एक मात्र सत्य ही, अपना आत्म भासता है, जिस की सत्ता पाकर सम्पूर्ण जड़चेतन प्राणी, जीते जागते प्रतीत हो रहे हैं। तब कहा है:—

बहता है पानी झर झर, चलती है हवा सर सर।
उड़ते हैं पंक्षी फर फर, फिरते हैं जोगी दर दर॥
लड़ती है फौज मर मर, होती है पूजा हर हर।
किस में ? मुझ में ! मुझ में !! मुझ में !!!

वेदांत कहता है, कि सदा अपने अन्तर आत्मा का स्मरण रखो। उसे आदि-अन्त से परे निर्भय निश्चय करो। भय परिच्छिन्नता में होती है, जिसमें कुछ इच्छा ही नहीं, उस में भय किसका ? मृत्यु आत्मा को नहीं डरा सकता ! पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकता ? यदि हम अद्वैत में नेष्टा रखते हैं, तो हम

उसी क्षण निश्चय करना चाहिये हमारी पुरानी जीव भावना नष्ट हो गई, जो केवल 'मैं' मेरेपने का पक्षपात मात्र था अब तो नित्य शुद्ध, असंग, अनुभव मात्र ही शेष रहेगा। ऐसे सर्व व्यापी सत्य को कौन क्षति पहुंचा सकता है ? पूर्व भारतवर्ष में बड़े २ कार्य करने वाले वे ही श्रेष्ठ पुरुष गिने गये हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। जिन्हों के परिच्छिन्न अहंभाव की जगह ब्रह्म भावका उदय हो चुका था। ऐसे ज्ञानवनों से ही देश का बड़ा उपकार होता आया है। क्योंकि घृणा, ईर्षा. लड़ाई-झगड़े आदि परिछिन्नपने में ही पैदा होता हैं। वे सब बुराइयें अध्यात्म ज्ञान से सदा के लिये विदा हो जाती है और शांति का समराज्य बराजने लगता है। यदि देश में हजारों नर नारियों के पीछे, एक भी अध्यात्म ज्ञानी होगा तो लोगों की दशा और से और हो सकती। तब कहा है:—

निष्कामता के शान का, भारत को गरूर है।
निर्लेपता, निर्पेखता, निज हर्षता में पूर है।
करना अमल वेदान्त का; गीता में दस्तूर है।
अर्जुन को आया समझ, वह ज्ञाय-योगीशूर है॥

अब आपके लिये सिर्फ यही कर्त्तव्य रह जाता है. कि साथ के लोगों में भी सच्चा आत्म-भाव जाग्रत करें, क्योंकि वे भी तो वही स्वरूप हैं, केवल उन्हें ज्ञान की आवश्यकता है। हमें चाहिये कि हम उनको सावधान करें और अपने वास्तविक स्वरूप के स्थित होने में सहायता दें यही मुख्य वात है, जिसकी आवश्यकता आज सारे संसार में प्रतीत हो रही है। यह सिद्धांत

बड़े २ पर्वतों से भी पुराना है। सत्य किसी की सम्पत्ति नहीं, वह सभ का अपना आप है। इसे अमल में लाने की देर है। तब कहा है:—

जो तुमको हिलाने आवे, वह खुद भस्म हो जावे।
तुम खुद की दीद खोलो; सभ दूर हो बलाएं ॥

निर्भय अङ्क

१—वेदांत कहता है-- जब तुम दुःखी वा रुगिण अवस्था में हो, मृत्यु का भय आन कर सताये, तब अपने को अजर अमर आत्मा चिन्तवन कर निर्भय हो जाओ।

२—जब भेदवादियों के बीच में भ्रम युक्त रोचक, भयानक बचन श्रवण करने से चित्त घबराने लगे, तो एक दम अपने को उस अज्ञान संयुक्त चित्त का साक्षी मान कर, उन कल्पित वचनों को त्याग दो।

३—जब जीवन संबंधी कोई शोक-चिन्ता आ घेरे, तो अपने अखण्ड आनन्द स्वरूप का गायन करते हुए, उस मोह माया को भगा दो।

४—अगर कोई शरीर संबंधी अंग, भंगु हो जावे, तो सदा अपने को अंग आकार रहित, चेतन आकाश वत् निश्चय कर, शरीर की त्रुटियां वा कम-पेशियां सभ भूल जाओ।

५—जब दुनियां के किसी भारी चक्कर में आ फंसो, तो उस वक्त अपने स्वरूप को निर्लेप और नित्य मुक्त निश्चय कर उस जाल से निकल जाओ।

६—जब कोई गृहस्थ संबधी कठिन समस्या आ व्याकुल करे, तो उसको एक मदारी का खेल समझते हुए अपने को संग संबंध से निराला जान कर उसी बोझ को हल्का कर दो।

७–अगर कोई क्रोध के आवेश में अपमान युक्त वचन कहे, तो अपने शान्तमय स्वरूप में स्थित हो कर कोई भी क्षोभ मन में न उत्पन्न होने दो।

८–जब किसी प्रकार की कामना चित्त को उत्तेजित कर सताने लगे, तब अपने पूर्ण तृप्त स्वरूप का स्मरण कर, उसी दीनता से दूर हो जाओ।

९–जब शरीर वा इन्द्रियों से कर्म करने का मौका मिले, तो अपने को साक्षी अवस्था में निश्चय कर, किसी भी कर्म का कर्ता अपने को न मानो।

१०–अगर साधारण लोगों से मिल कर कार्य करने का अवसर सामने आवे, तो सब भेद भाव दिल से हटा कर, सहज और समता भाव से उसी कार्य को पूरा करो।

११–इस प्रकार आत्म निर्भरता का अभ्यास बढ़ाने से माया अपना प्रबल प्रभाव नहीं दिखा सकती। तब कहा है:—

मैं सैर करने निकला, ओढ़े अबर की चादर
पर्वतो में घूमता था, हवा के झोंको पर
झट बोल उठी धुनी सी वेदों की सार खाँसी
तत्वमसि–तत्वमसि, तूं ही है जान सबकी
पर्वत नदी और नाले, पहिचान कर पुकारे
ए पियारे ये सारे, तेरे ही है निजारे

जो कुछ भी हम बने हैं वो रूप है तो तुम है
जान है तो तुम है जहान है तुम हैं
यह सुनके मैंने झांका, भीतर के अपने वांका
हर रंग में तो मैं था, ऊमंग में तो मैं था
सभ संग में तो मैं था।

एक जीवन मुक्त महां पुरुष अपने वासत्व एकता का अनभव जज्ञासू जनों के जगाने अर्थ क्या कह रहे हैं ! जब मैं सैर करने निकला था तब मैं बादलों की चादर ओढ़ी हुई थी, हवा के झोंकों के साथ परबतों के चोटियो पर विचर रहा था, तो वहां एका एक ध्वनि सुनाई दी, वह वेदों के सारवी सी थी, "कि तत्वमसि" याने तू वो ही है तूं वो ही है ? सच्चिदानंद आत्मा सभ की फिर तो पर्वत नदी और नाले झरने और फूहारे सभु मेरे वास्तविक स्वरूप को पहचान कर कहने लगे कि ओ पियारे, हम तो तेरे ही निजारे, जो कुछ भी हम बने हैं उसमें रूपों का रूप तूं हैं, और जानों की जान तूं है। यह सुन कर मेरे आश्चर्य की हद न रही जब अपने आप में डुबकी लगाई अर्थात् निर्विकल्प समाधि से आकर देखा तो निश्चय हुआ कि सभ रग में मैं ही था, सभु ऊमंग और उत्साह, नाना प्रकार के ढंग मेरे को अपने में ही दिखाई देने लगे। मैं महान आनन्द में मगन हो कर पूछने लगा, कि मेरे महान स्वरूप में एसा सभु किसने कर दिया है। परन्तु इसका उत्तर कही से न पाकर मैं आप से आप में आप ही हो गया। ॥ ॐ ॥

नाहं देहो, जन्म-मृत्यु कुतो मे !

नाहं प्राणाः, क्षुत्पिपासा कुतो मे !

नाहं चित्तं, मोह शोकौ कुतो मे !

नाहं कर्ता, बंध-मोक्षौ कुतो मे !

चिदानन्द रूपः; शिवोऽहम् शिवोऽहम् !!

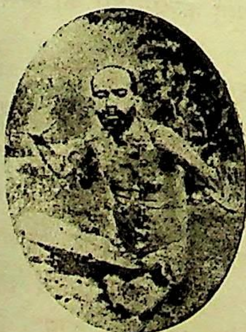
भावार्थ—मैं यह पंचभूतक देह नहीं हूँ. तो मेरा जन्म मरण कैसा ? जब मैं इन प्राणों से भी निराला हूं, तब भूख और प्यास से मेरा क्या सम्बन्ध ? मैं चित वा अन्तःकरण से असंग चेतन स्वरूप हूँ. तो फिर चित्त के मोह-शोक आदिकों को अपने में कहां रखूं ? जब मैं कर्ता और भोगता. इन दोनों प्रकृति के स्वभावों से परे स्थित हूँ तो मेरे लिए बन्ध मोक्ष का सवाल ही कैसे उठ सकता है ? क्योंकि मुझ सच्चिदानन्द शिव कल्याण स्वरूप में, इन सम्पूर्ण कल्पनाओं का अभाव है।

वेदान्त कहता है—अब जागो और अपने शुद्ध चेतन स्वरूप के प्रभाव को समझो। आपको यह ख्याल नहीं करना चाहिए, कि हम इतना काल अपने आप से अज्ञात क्यों रहे। यह माया का प्रभाव अनिर्वचनीय है। इस दीर्घ काल के अज्ञान को, एक ब्रह्म विद्या ही मिटाकर अपने वास्तविक स्वरूप में विश्राम दिला सकती है। जैसे किसी पहाड़ की कंद्रा में हजारों वर्षों से भरे हुए अन्धकार को, दीपक का प्रकाश एक क्षण में निवृत कर देता है, वैसे हृदय रूपी गुहा में अनंत जन्मों का

बसा हुआ अपने स्वरूप का अज्ञान ब्रह्मविद्या के प्रकाश होने पर उसी काल में निवृत होे जाता है। तब व्यवहारिक दशा में ब्रह्म का साकार दर्शन और परमार्थक अवस्था में सम्पूर्ण आकृतियों रहित निराकार दर्शन अर्थात दोनों प्रकारों से ब्रह्म का अभेद अनुभव कर जिज्ञासु, ज्ञानवान होकर जीवन मुक्ति और बिदेह मुक्ति का अलौकिक लाभ पाकर कृत कृत्य हो जाता है। ॥ ॐ ततसत् ॥

ज्ञान प्रकाश हुआ, तब रोशन हुई रैन अंधेरी ।
'ब्रह्मविद्या' गुर ते पाकर, उल्टी खाधी फेरी ॥
जिस वल देखां, तूं ही दिसंदा, सभ घट सूरत तेरी ।
सहजे भेद गया, सुख पाया, ना को वैर न वैरी ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥







अपना आप:---

अपना आप में आप गंवा के, ब्रह्म स्वरूप कहावे कौन ?
देह धर्म दी दावा सुटके, इस रस्ते पर आवे कौन । टेक ?

१—छोड़ दुनियां दे झेड़े झटके; खयाल खुदी दा-
पाड़ों पटके ।
हृदय धाम को धावे कौन ? अपना आप......

२—तत्वमसि कह वेद पुकारन,
सत्गुरू सो तूं साफ सुणावन,
जीवणा जादू ढ़ावे कौन ? अपना आप......

३—बिरह दी बाज़ी वे मुहताज़ी,
रहंदे रिंद्ध रज़ा में राज़ी ।
सिर देवे या लावे कौन ? अपना आप.......

४—मैं दीदार; दीदार मैं विचि,
आखां वेखां आवां तहिं विचि ।
दो तीन दा भ्रम भुलावे कौन ? अपना आप......

५—वजिंदा निर्भय नीहं नगारा,
विचे 'परमानन्द' भराडारा ।
सुण सुण के सुख पावे कौन ? अपना आप......

आवश्यक सूचना

यद्यपि 'परमानन्द भण्डार' से अध्यात्म भावों को जाग्रत करने अर्थ सिन्धी हिन्दी भाषा में अनेक अनमोल पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं. तथापि हमारा विचार है। कि प्रेमी पाठक गण इन आत्मिक और मानसिक बल बढ़ाने वाले वेदान्त विषय पर निकलती हुई, पुस्तकों से महान लाभ उठाते रहें इसलिए मूल्य साधारण रखा गया है :—

❀ हिन्दी सिन्धी पुस्तकों की सूची ❀

१. ब्रह्म विद्या हिन्दी में	६५ नये पैसे
२. पंचदश आदेश और भजन आनन्द हिन्दी में	५० न० पै०
३. जीवन सिद्धान्त सिंधी में	६६ न० पै०
४. गृहस्थ में ब्रह्मचर्य	४० न० पै०
५. ॐ जगत सिंधी में	६५ न० पै०
६. भजन आनन्द सिंधी गुरमुखी	५० न० पै०
७. गीता जीवन गुरमुखी	३१ न० पै०

पुस्तक मिलने का पता :—

१—श्री परमानन्द भण्डार पो०: कनखल
हरिद्वार (यू० पी०)

२—श्री परमानन्द भण्डार रोड नं० ११
खार बम्बई :—२१

!! टिप्पणी !!

एक सोये हुये मनुष्य ने अपने हृदय की धड़कन को यह समझा, कि कोई उसके द्वार पर हाथ मार रहा है। वह उठ कर द्वार पर आया और दरवाजा खोल कर देखा, तो बाहर कोई नहीं था। वह आकर लेट गया। उसे फिर खट्खटाहट सुनाई पड़ी और द्वार खोलने पर अब भी वहां कोई नहीं दिखाई दिया अन्त में बड़ी सावधानी बर्तने पर उसे जान पड़ा, कि उसके अपने ही हृदय की धड़कन थी ! जिसे वह द्वार की खट्खटाहट समझ रहा था।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य अविद्या की निंद्रा में जिस अखण्ड सच्चिदानन्द परमात्मा को अपनी कल्पना कर, सदा बाहर समझता आया है, उसे वेदान्त ज्ञान के पश्चात् पता लगता है, कि वह उसके भीतर अपने ही हृदय में स्थित है अर्थात् निश्चय से कहने लगता है, कि वह सर्व आत्मा मेरा ही अपना स्वरूप है।

। ॐ ।

—०—

❁ वेदान्त वचन ❁

[१] आप अब तक दूसरों के मन को पहचानते हैं, परन्तु मन वाले को नहीं पहचाना।

[२] आजकल आत्मा से अलग परमात्मा को ढूंढने का स्वभाव साधारण लोगों में ऐसा घर कर गया है, जो वह सच्चे आत्म विश्वास को गवा कर मामूली से मामूली सवाल हल करने में भी अपने को असमर्थ समझते हैं।

[३] इस जीवन का दारोमदार जिस अविनाशी आत्म तत्व पर है, उसकी उपेक्षा कर और आधार ढूंढ़ना ऐसा है। जैसा कोई दही से मक्खन निकालने के बजाय, पानी को बिलोड़ने लगे।

[४] कोई भी मनुष्य आत्म ज्ञान के प्रभाव से जब तक निर्विकार अवस्था में स्थित नहीं होता. तब तक उसे अनेक प्रकार के क्लेशों से बचना महाल है।

[५] हर एक मनुष्य को आत्म ज्ञान का अधिकार पाने के लिये चित की अवस्था में बड़ा परिवर्तन लाना होगा। संशय आत्मिक सतसंगी कितना भी पुराने से पुराना क्यों न हो तो भी उसमें गिरावट का भय बना ही रहता है।

[६] जैसे शेर की गर्जना शेर को नहीं डरा सकती, और लोहे की तलवार लोहे की मूर्ति को काट नहीं सकती, वैसे आत्मवेता को काल की गरजना, अपनी ही गरजना है और कर्मों की तलवार अपना ही खेल है, अर्थात् अपने से अलग उसे कुछ नहीं भासता।

❁ ॐ ❁

क्वालिटी प्रेस, कनखल।